जलपरी

[१]

चिरकाल हुआ, प्रभास तीर्थ के समीप, समुद्र के बिलकुल तट पर ही वृद्ध मनुष्य रहता था। वह समुद्र की लहरों के साथ बह कर आए शैवाल-समूह को बटोर कर खाद के लिए बेच देता था। उसी से की जीविका चलती थी। यहाँ की चट्टानें विशाल तथा सुन्दर हैं और द का जल एक तरफ बड़े वेग से आकर इनसे टकराता है। दूर-तक प्रदेश में इस से अच्छे चट्टानों के दृश्य शायद बहुत ही कम हैं। यहाँ चट्टानें लगभग बिलकुल सीधी और उत्तुंग हैं। जहाँ-तहाँ ऊपर से चे, रेत में, पहुँचने के लिए बहुत ही कम मार्ग है और वहाँ जीवन का शय बना ही रहता है। समुद्र और चट्टानों के बीच में रेतीला स्थान ना तग था कि लहर आने पर वहाँ खड़े होने की भी जगह नहीं हती थी।

इसी तट पर वृद्ध मैलाकी की झोपड़ी थी। मैलाकी ने अपनी यह झोपड़ी निरे बालू पर नहीं बनाई थी। चट्टान में ऊपर से नीचे तक एक बहुत बड़ी दरार थी जिससे उतरने के लिए एक टूटा-फूटा मार्ग बन गया था। यह दरार नीचे की तरफ इतनी थोड़ी थी कि चट्टान की नींव पर मैलाकी ने अपने रहने का स्थान बना लिया था और यहीं वह वर्षों से रहता चला आता था। लोग कहते हैं कि अपने व्यवसाय के प्रारम्भिक दिनों में वह शैवाल इकट्ठा कर-कर के ऊपर बेचने ले जाया करता था। परन्तु कुछ समय बाद उसे एक गधा मिल गया था जिसे उसने चट्टान पर चढ़ने उतरने का अभ्यास करा दिया था। वह इसी पर अपना घास का ग... सके कर ले जाता था। गधे के रहने के लिए अपनी झोपड़ी के पास छोटे एक छप्पर भी डाल दिया था।

जैसे-जैसे समय बीता, वृद्ध मैलाकी को गधे के अतिरिक्त ईश्वर की दया से एक दूसरा सहायक भी मिल गया। यदि यह सहायता उसे न मिलती तो शीघ्र ही अपनी कुटी और स्वतन्त्रता को छोड़ कर उसे भीख माँगनी पड़ती, क्योंकि गठिया और वृद्धावस्था के कारण वह बड़ा निर्बल हो गया था।

जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय मैलाकी बारह महीने से पहाड़ी के ऊपर नहीं चढ़ा था। पिछले कुछ महीनों से उसने अपने व्यवसाय को बढ़ाने की भी कोई चेष्टा नहीं की थी। इस बीच में उसका एक-मात्र काम रुपया सँभाल लेना तथा कभी-कभी गधे के लिए चारे का एकाध गट्ठर खोल कर डाल देना ही था। व्यवसाय का मुख्य काम तो उसकी पोती कौला ही करती थी। यह अब सर्वथा बालिका न थी, प्रत्युत नवयौवन के बल से वह नवयुवती हो गई थी।

इसको समुद्र तट के आस-पास के सब किसान तथा तीर्थ के सभी छोटे-मोटे व्यवसायी तक जानते थे। उसकी आकृति से सादगी टपकती थी तथा वह बिलकुल इहलोक की नहीं मालूम होती थी। उसका काला चमकीला केशपाश, जिसमें कभी कंघी का स्पर्श तक न हुआ था, विपर्यस्त दशा में बिखरा रहता था। उसका क़द नाटा, हाथ छोटे और आँखें काली थीं। लोग कहते थे कि यह कौला बड़ी बलिष्ठ है। आस-पास के सभी बालक इस बात की साक्षी देते थे कि रात-दिन काम करते रहने पर भी वह थकावट का नाम नहीं जानती। परन्तु उसकी आयु के सम्बन्ध में बड़ा मत-भेद था। कुछ लोग यदि उसे दस वर्ष की बतलाते तो पास ही उसे पच्चीस वर्ष की बतलाने वाले भी मौजूद थे। परन्तु पाठक समझलें कि इस समय उसकी बीसवीं वर्षगाँठ बीत चुकी थी। बुड्ढे लोग उसकी इस बात [illegible]सा करते थे कि अपने पितामह के साथ उसका व्यवहार बहुत अच्छा [illegible]ने थे कि कौला अपने लिए तो कुछ नहीं खरीदती; हाँ, अपने दादा [illegible]-सी ताड़ी और तम्बाकू अवश्य ले जाती है।

कौला का एक भी मित्र नहीं था। अपने समवयस्कों में भी उसकी बहुत कम जान-पहचान थी लोगों का कहना था कि वह देखने में भयावनी और स्वभाव में बुरी है, वह किसी से ढंग के साथ नहीं बोलती और पूरी चडी है, आदि। नवयुवक उसकी कोई चिन्ता नहीं करते थे। उसके पहनने के वस्त्र सदा एक से रहते थे। पूनम के दिन भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता था। उसके पैर प्रायः नंगे रहते थे। उसने कभी भी स्त्री सुलभ मद के मोहक जाल का प्रयोग नहीं किया था।

जिस प्रकार उसके वेष में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता था उसी प्रकार और बातों में भी वह सदैव एक सी रहती थी। साथ ही वृद्ध मैलाकी को भी किसी ने किसी मन्दिर में जाते नहीं देखा था।

परन्तु पिछले दो वर्षों से कौला तीर्थ के एक वृद्ध व्यास से उपदेश ग्रहण करने लगी थी और पर्व के दिन प्रायः देवालयों के दर्शन को भी जाती थी। पर इन अवसरों पर वह अपने वस्त्र नहीं बदलती थी। अपने सपरिश्रम और सशययुक्त कार्य के लिए उसने एक गाढ़े की चादर और एक गाढ़े की धोती को ही उपर्युक्त वस्त्र समझ रक्खा था। इन्हीं को पहने हुए वह देवालय में भी जाकर भीतर की ओर द्वार से लगी हुई शिला पर बैठ जाती थी। जब व्यासजी ने उससे देवालय में आने को कहा तो उसने उत्तर दिया कि मेरे पास वहाँ आने को कपड़े नहीं हैं। इस पर पुजारी ने उसे समझा दिया कि वह वस्त्रों का कोई विचार किये बिना ही देवालय में आ सकती है। पुजारी की इस बात पर विश्वास करके वह देव-मन्दिर में भी जाने लगी थी।

इससे उसने अपने प्रशसनीय साहस का परिचय दिया। उसके स्वभाव में कुछ हठ भी मिला हुआ था। लोग कहते थे कि मैलाकी के पास धन है और यदि कौला चाहती तो महिलोचित रेशमी साड़ी पहन सकती थी। पं० रामानन्द व्यास ने जब वृद्ध मनुष्य के पास जाकर इस विषय पर बात छेड़ी तो वह इतना क्रुद्ध हुआ कि उनको चुप हो जाना पड़ा और उसके

छोटे

पहले की ही भाँति प्र्ात दिन के से कपड़े पहने हुए मन्दिर में पहुँच कर शिला पर जा बैठती।

[२]

कौला के अविश्रांत परिश्रम के विषय में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता था, क्योंकि जितना शैवाल अपने गधे की सहायता से वह इकट्ठा कर लेती थी मैलाकी उसका आधा भी किसी रोज अपने जीवन भर में जमा नहीं कर पाया था। परन्तु आजकल घास का भाव भी मद्दा हो रहा था। कौला और गधा, दोनों अनवरत परिश्रम करते थे, और शैवाल के ढूर इतनी शीघ्रता से जमा हो जाते थे कि उसके छोटे छोटे हाथ और जरा से शरीर को देखने वालों को आश्चर्य होता। लोग उससे पूछते—"क्या तुम्हे रात में कोई परी या भूत या राक्षस सहायता देने आता है?" पर वह उनको ऐसा कड़ा उत्तर देती कि जिससे उसके विषय में नाना प्रकार की बात सुनने में आती थीं।

कभी किसी ने उसे अपने काम की शिकायत करते नहीं सुना था। परन्तु अब वह अपने पड़ोसियों के व्यवहार की भी बड़ी शिकायत करने लगी थी। पहले वह रामानन्द व्यास के पास गई और जब उनसे यथेच्छ सहायता न मिली तो वह वहाँ के किसी वकील के पास जाकर अपना दुःख रोने लगी। परन्तु दुर्भाग्य से वह भी व्यासजी से अच्छा सहायक न निकला। जिस स्थान से वह शैवाल बटोरा करती थी वह एक गुफा थी जिसे लोग मैलाकी की गुफा कहा करते थे। समुद्रतट पर पहुँचने का एक-मात्र वही मार्ग था जो ऊपर से मैलाकी की झोपड़ी तक आता था। पानी के ज्वार के समय गुफा की चौड़ाई लगभग दो सौ गज़ होती थी और उसके दोनों तरफ़ चट्टानें इस प्रकार खड़ी थीं कि उत्तर और दक्षिण से भी मैलाकी का स्थान पूर्णतया सुरक्षित रहता था। शैवाल बटोरने के लिए यह बड़ा उपयुक्त स्थान था।

समुद्र की प्रत्येक लहर बहुत-सा शैवाल लाकर गुफा में डाल जाती थी। और विष्णुपद की हवा के समय तो वहाँ उसकी कमी कभी रहती

ही नहीं थी। जिस समय समुद्र के शान्त होने के कारण मीलों तक और कहीं उसका पता भी नहीं होता था तब भी वहाँ लम्बे कोमल शैवाल के ढेर-के-ढेर इकट्ठे किये जा सकते थे। वेगशाली लहरों में से शैवाल का खींच निकालना बड़ा सापद और कठिन काम था। अब अन्य लोग भी उसकी गुफा में घुस आने लगे और उसके देखते ही देखते उसकी — उसके दादा-की सम्पत्ति उठा कर ले जाने लगे। यह देख कर कौला का हृदय विदीर्ण हो जाता था। इसी दुःख के कारण उस को वहाँ के वकील के पास जाना पड़ा था। परन्तु दुष्ट वकील ने उससे रुपया तो ले लिया परन्तु काम उसका कुछ भी न किया। बेचारी का हृदय खण्ड-खण्ड हो गया।

उसकी यह एक धारणा थी कि ऊपर से गुफा को जो रास्ता आता था वह इन्हीं दोनों दादा-पोती की सम्पत्ति था। जब लोग उसे बतलाते कि यह गुफा में आने वाला समुद्रजल उसके दादा के स्वाधीन अधिकार में नहीं थे तो वह मान जाती। परन्तु गुफा के मार्ग को कौन कह सकता है? किसने उसे इस रूप में तैयार किया है? क्या उसने कष्ट, थकावट और परिश्रम सह कर अपने छोटे २ से हाथों से पत्थर का एक-एक टुकड़ा लगा कर उसे इसलिए ठीक नहीं किया था जिससे उसके दादा का गधा वहाँ पैर टिका सके? क्या उसने मिट्टी का एक एक ढेला लगा कर चट्टान की सतह को एकसार नहीं किया था जिससे उसके गधे को विषम मार्ग पर चलने में कठिनाई न हो? अब, जब उसने देखा कि बड़े २ किसानों के लड़के भी अपने-अपने गधे लेकर वहाँ आते हैं— और इनमें एक युवक भी अपना टट्टू लेकर आता है— तो वह समस्त मनुष्य-जाति की निन्दा कर उठी और कसम खाकर बोली कि वकील मूर्ख हैं।

उन लोगों के ले जाने के बाद भी कौला के लिए काफी शैवाल बच रहता था। परन्तु उसको यह बात समझाने के सब प्रयत्न निष्फल थे। क्या तमाम शैवाल पर, या कम-से-कम पूरे रास्ते पर, उसका और उसके दादा का पूर्ण अधिकार नहीं था? क्या इस प्रकार के हस्तक्षेप से उसके व्यापार को व्याघात नहीं पहुँचता है? उस नैसर्गिक या स्वत्व अपने [illegible]

टट्टू सहित मार्ग में रहता है तब क्या उसे अपने लदे हुए गधे को बीच में से ही नहीं उतारना पड़ता ? गेंदासिंह ने यह भी इच्छा प्रकट की थी कि कौला उसके निर्धारित मूल्य पर अपना शैवाल उसके हाथ बेच दिया करे। परन्तु कौला ने इसे स्वीकार नहीं किया और गेंदासिंह ने इस प्रकार उसे हानि पहुँचाने के लिए अपना टट्टू भेजना आरम्भ कर दिया।

इस पर आँखों से चिनगारियाँ छोड़ती हुई कौला बूढ़े बाबा से बोली, "अब के आवे तो मैं उसके गधे की टाँग ही तोड़ दूँगी।"

[३]

गेंदासिंह का मकान प्रभास के समीप पहाड़ी से कोई एक मील की दूरी पर था। समुद्र का शैवाल ही यहाँ ऐसी वस्तु था जिसे वह खाद के लिए सुगमता से पा सकता था। अतएव उसके लिए यह बड़ी कठिन बात थी कि कौला के हठ के कारण वह शैवाल लेना छोड़ दे। कौला ने गेंदा के लड़के से कहा, "और भी तो कितनी ही खोहें हैं।" लड़के ने उत्तर दिया, "परन्तु कौला, न तो और कोई इतनी समीप ही है और न कहीं इतना शैवाल ही बह कर आता है।"

गेंदा के लड़के ने उसे समझा दिया, "जो शैवाल समीप और अधिक पास होगा उसे मैं नहीं छूऊँगा। मैं तुमसे बड़ा हूँ और बलिष्ठ भी हूँ, अतएव मैं इन चट्टानों से शैवाल ले लिया करूँगा जहाँ तुम जा भी नहीं सकोगी।"

घृणा-भरे नेत्रों से देखती हुई कौला ने फिर भी टट्टू को लँगड़ा कर देने की धमकी दी और कहा, "मैं भी वहाँ से शैवाल ला सकती हूँ जहाँ जाने का तुम्हारा साहस भी न हो सके।"

इस क्रोध पर गेंदा का लड़का कुन्दन हँसा। उसने उसके विपर्यस्त केशों पर ताना मारा और कहा, तुम तो निरी जलपरीजैसी हो।"

"जलपरी-जैसी! हाँ, हाँ! मैं तुम्हें भी जलपरी बना दूँगी। मैं यदि पुरुष होती तो कभी एक गरीब लड़की और अपाहिज बुड्ढे के यहाँ डाका मारने न जाती। कुन्दन, तू मनुष्य नहीं है—तू आधा भी मनुष्य नहीं है।"

परन्तु उसके कहने से क्या होता था। कुन्दन एक बड़ा सुन्दर युवक था। उसके हाथ-पैर सुडौल थे तथा बाल सुनहरे घूँघरवाले, और नेत्र चमकीले थे। उसका बाप तो एक साधारण किसान था; परन्तु अड़ोस-पड़ोस की नवयुवती कन्याओं में कुन्दन का विशेष आदर था। हर एक उसको चाहती थी तो केवल कौला। वह तो उसे जहर समझती थी।

जब कुन्दन से लोगों ने पूछा, "तुम इतने भले होकर एक गरीब लड़की और बुड्ढे आदमी को क्यों सताते हो?" तो उसने उत्तर दिया, "असल बात ही इसका न्याय कर देगी। मेरी समझ में तो यह ठीक नहीं है कि जिसे ईश्वर ने सबकी सम्पत्ति बनाया है उस पर कोई एक मनुष्य ही अपना अधिकार जमा ले। मैं कौला को कोई हानि तो पहुँचाऊँगा नहीं, और मैंने उससे यह कह भी दिया है। परन्तु वह तो निरी मक्कार लोमड़ी है—और उसे इस बात की शिक्षा तो देनी ही पड़ेगी कि वह जरा जबान सभाल कर बोला करे। यदि एक बार वह मुझसे सभ्यता से बोले तो मैं अपने पिता से कह कर बुड्ढे आदमी को उसके रास्ते के लिए कुछ महसूल तो दिलवा ही दिया करूँ।"

इसका कौला ने उत्तर दिया, "मैं अच्छी तरह बोलूँगी!—उससे! कभी नहीं। जब तक मेरे मुँह में जीभ है तब तक तो यह होने से रहा। और मुझे यह भी भय है कि पुजारी ने भी उसे समझाने की जगह उसकी पीठ ही और ठोक दी होगी।"

परन्तु दादा ने टट्टू को लँगड़ा कर देने के लिए उत्साहित नहीं किया। उसने कहा, "टट्टू की टाँग तोड़ देना साधारण बात नहीं है। इससे, मैं समझता हूँ, तुझे जेल में जाना पड़ेगा जिससे हम दोनों को परेशानी होगी। हाँ, टट्टू के मार्ग में हम जितनी बाधाएँ हो सकें उतनी डाल सकते हैं। हमारा गधा तो सीखा हुआ है, उसके काम में इससे कोई रुकावट नहीं पैदा होगी।"

अगली बार ऐसा ही हुआ, जब कुन्दन मैलाको को झोंपड़ी के समीप पहुँचा तो उसने मार्ग बिगड़ा हुआ पाया। परन्तु किसी न किसी प्रकार

वह उतर गया। बेचारी कौला ने देखा कि जिन पत्थरों को उसने बाधा उत्पन्न करने के लिए बड़े परिश्रम से मार्ग में डाल पाया था वे सब एक तरफ को लुढ़का दिये गए हैं। बेचारी ने समझा, "मुझे हानि पहुँचाने के लिए यह पूर्णतया कटिबद्ध है।" मारे क्रोध के वह पागल सी हो गई।

मैलाकी अपनी झोपड़ी के द्वार पर बैठा था। आगन्तुक को देख कर बोला, "कुन्दन, तुम तो एक भले लड़के हो।"

कुन्दन ने उत्तर दिया, "जो मुझे हानि नहीं पहुँचाता उसका मैं भी कुछ नहीं बिगाड़ता। —क्यों मैलाकी, समुद्र तो सब के ही लिए है न ?"

कौला ने कहा, "और आसमान भी तो सब के ही लिए है न ? पर मैं तो तुम्हारे कुठलों पर उसे देखने के लिए चढ़ने नहीं जाती। तुम मे तनिक भी इन्साफ या गैरत नहीं है जो तुम एक बुड्ढे आदमी को तङ्ग करने के लिए आ पहुँचते हो।" इस समय वह एक आँकड़ा लिए हुए चट्टानों के बीच मे खड़ी थी और उससे समुद्र की लहरों में से शैवाल खींच रही थी।

"मैं न तो तुम्हें दिक करना चाहता हूँ और न इन्हे। थोड़ी देर मुझे यहाँ रहने दिया करो तो हम अब भी मित्र हो सकते है।"

कौला उत्तेजित हो कर बोली, "मित्र! कौन तुम जैसों को मित्र बनाएगा! तुम्हें इन पत्थरों को यहाँ से हटाने की क्या पड़ी थी ? पत्थर तो दादा के हैं न।" इन शब्दों के साथ ही क्रोध के आवेश में वह ऐसी हो गई मानों उसके ऊपर झपटी पड़ती थी।

वृद्ध ने कहा, "रहने दो कौला, रहने दो। उसे अपना दण्ड खुद मिल जाएगा। किसी न-किसी दिन किनारे पर जब जोर की हवा चलती होगी, वह अपने आप डूब कर मर जाएगा।"

कौला ने कहा, "डूब भी जाय वह। जब वह उस सामने वाले गड्ढे में गिर जाएगा और लहर आती होगी तो मैं उसे बचाने के लिए अपनी उँगली भी न हिलाऊँगी।"

"नहीं, कौलारानी ! तुम मुझे कृपा करके उस लम्बे शैवाल की तरह अपने आँकड़े से निकाल लेना।" कुन्दन ने चिढ़ाने के लिए कहा।

कुन्दन की बात सुन कर उसने घृणा से मुँह फेर लिया और वह अपनी झोपड़ी मे चली गई। यह उसका अपना काम करने का समय था। कौला की इसमें भी बड़ी हानि होती थी कि लहरों में से शैवाल को निकालते समय कुन्दन उसके ढङ्ग को गौर से देखता था।

[४]

बैशाख का महीना था और तीसरे पहर के लगभग चार बज चुके थे, सुबह से दोपहर तक पश्चिम दिशा से बड़े जोर की हवा चली थी और बीच-बीच में पानी के झल्ले भी पड़ जाते थे। गुफा में दिन भर सामुद्रिक पक्षियों का आना-जाना लगा रहता था। इन लक्षणों से कौला को विश्वास था कि आने वाली लहरें चट्टान को शैवाल से बिलकुल ढक देंगी।

ज़रा देर में लहरें अद्भुत् वेग के साथ उन छोटी-छोटी चट्टानों की तरफ बढ़ने लगीं यही समय था जब कि शैवाल सग्रह किया जा सकता था, क्योंकि सात बजे अँधेरा हो जायगा, नौ बजे बाढ़ जोर की होगी और दिन निकलने से पहले लहरें फिर शैवाल को समुद्र में बहा ले जायँगी। कौला इस बात को खूब अच्छी तरह समझती थी और कुछ-कुछ कुन्दन भी समझ गया था।

हाथ में आँकड़ा लिए हुए कौला नगे पैर आई। उसने कुन्दन के टट्टू को चुपचाप रेत में खड़ा हुआ देखा और उसकी प्रबल इच्छा हुई कि इस पर आक्रमण करूँ। कुन्दन भी इस समय त्रिशूल की तरह का एक सामान्य आँकड़ा लिए हुए एक बड़ी चट्टान के नीचे खड़ा-खड़ा लहरों को देख रहा था। उसने कह रक्खा था कि मैं उसी जगह से घास बटोरूँगा जहाँ से कौला नहीं ले सकती; और अब वह देख रहा था कि पहले कौनसा स्थान उपयुक्त होगा।

मैलाकी ने देखा कि कौला टट्टू को मारने के लिए बढ़ी। वृद्ध को पशु से भी उतनी ही घृणा थी जितनी कि उसके स्वामि से, परन्तु उसने चिल्ला कर कहा, "रहने दो कौला, उससे मत बोलो।"

वायु के साथ आई हुई अपने दादा की आवाज सुनकर कौला रुक गई और अपने काम मे लगी। गुफा से नीचे की तरफ को जाकर चट्टानो में शीघ्रता से झपटती हुई उसने देखा कि कुन्दन अब भी अपने स्थान पर खड़ा है। सामने ही घूमती हुई समुद्र की श्वेत लहरें बड़े वेग से उठ-उठ कर टूट रही थीं और वायु चट्टानों की कन्दराओं तथा सन्धिस्थलों मे विषण्ण रूप से घुरघुरा रही थी।

बीच-बीच मे प्रायः मेह की बौछारें हो जाती थीं। आकाश, यथेष्ट प्रकाश होने पर भी, बादलों के कारण अन्धकार से घिरा था। जो लोग समुद्र तट की शोभा पर मुग्ध हैं कदाचित् ही उन्हें और कभी इससे अधिक सुहावना दृश्य देखने को मिला होगा। भिन्न-भिन्न वर्णों के संयोग से उत्पन्न हुई उस समय की शोभा उपमातीत थी। वितत समुद्र की नीलिमा; टकराती हुई लहरों की धवलता, उड़ती हुई बालुका के आपीत रङ्ग तथा चट्टानों की यत्रतत्रस्थ पिंगल और अरुण रेखाओं से दृश्य पर एक विचित्र सौन्दर्यश्री बरस रही थी।

परन्तु न तो कौला और न कुन्दन को ही इन बातों का ध्यान था। सच तो यह है कि वे इस समय अपने व्यवसाय की भी चिन्ता नहीं कर रहे थे। कुन्दन सोच रहा था कि किस प्रकार मैं उन स्थानों से अपना काम बनाऊँ जहाँ कौला नहीं पहुँच सकती और कौला सोच रही थी कि जहाँ-कहीं कुन्दन जाएगा मैं वहाँ उससे आगे जाऊँगी।

बहुत सी बातों में कौला कुन्दन की अपेक्षा लाभ में थी। वह वहाँ के प्रत्येक टीले से परिचित थी और जानती थी कि कहाँ खड़ा होने का निरापद स्थान है और कहाँ नहीं। इसके अतिरिक्त उसमें फुर्ती भी, अभ्यास के कारण, अधिक हो गई थी। कुन्दन भी उसकी भाँति बलिष्ठ और फुर्तीला

था परन्तु वह लहरों के मध्य में उसकी तरह एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर नहीं कूद सकता था। और न अभी वह इस योग्य ही था कि जल के वेग से सहायता ले सके। लहरें तो कौला की मित्र थीं, वह उनसे मनमाना काम निकाल सकती थी। वह उनके वेग को पहचान लेतीं और इस बात का अनुमान कर लेती थीं कहाँ जाकर वह कम होगा।

कौला अपनी गुफा के समीप के गढ़ों में काम करते समय बड़ी दक्ष और निडर रहती थी। जैसे ही उसने कुन्दन को एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर जाते देखा, उसे यह समझ कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वह बहक रहा है। गुफा में आने वाली हवा के झोके के कारण शैवाल उत्तर-वाले पुश्ते तक नहीं पहुँचेगा और उसी जगह एक गहरा गड्ढा भी था।

अब वह अपने काम में लगी। वह अपने आँकड़े से समुद्र के विपर्यस्त शैवाल को रेत के दूर से सिरे पर रखती जाती थी जिससे आक्रामक तरङ्ग उस पर पुनरधिकार न करलें।

इधर कुन्दन भी उत्तर-वाले पुश्ते पर शैवाल के ढेर लगा रहा था। समय बढ़ता जा रहा था और कुन्दन को विश्वास था कि वह, टट्टू से कितना ही काम लेने पर भी, सब शैवाल उस रोज नहीं ले जा सकेगा। परन्तु तो भी उसका ढेर कौला के ढेर से बड़ा न था। कौला का आँकड़ा उसके आँकड़े से अच्छा था और उसकी दक्षता उसके बल से अधिक उपयोगी थी। जब कभी उसका कोई प्रयत्न निष्फल होता तो वह उसे अपनी स्वाभाविक हँसी द्वारा चिढ़ाती और चिल्ला कर कहती, "तुम तो आधे भी मनुष्य नहीं हो।" पहले तो वह हँसी में टालता रहा, परन्तु जब वह बार-बार अपनी सफलता पर गर्व करने और उसकी विफलता पर ताना मारने लगी तो उसने नाराज होकर उत्तर देना बन्द कर दिया। उसे अपने ऊपर भी सामने आई हुई इतनी सम्पत्ति को खो देने का विचार कर बड़ा क्रोध हुआ।

अशान्त समुद्र लम्बे-लम्बे शैवाल से भरा हुआ था, परन्तु ढेर-के ढेर कुन्दन के सामने से बहे चले जाते थे। कभी-कभी तो वह उसके ऊपर से

होकर भी निकल जाते थे। कौला के विचित्र कटाक्षों की आवाज उसके कानों में पड़ती थी। अंधेरा होता जाता था, लहरें बढ़ती हुई जोर से आ-आ कर टकराती थीं और हवा के झोंके जल्दी-जल्दी अधिक वेग से आ रहे थे। परन्तु कुन्दन का काम बन्द न था। जब तक कौला करेगी तब तक, उसके चले जाने के भी थोड़ी देर बाद तक, वह वहाँ रहेगा। क्या वह एक लड़की से मात खा जायगा?

बड़ा गड्ढा पानी से भर गया था और पानी मानों इस समय उबल रहा था। उसके भीतर शैवाल के ढेर-के-ढेर इधर-उधर नाच रहे थे, जिनके आकार और स्थूलता को देख कर कोई भी मनुष्य डूब जाने की आशङ्का त्याग कर उनके ऊपर लेटने की इच्छा कर सकता था।

कौला भली प्रकार जानती थी कि इस उबलते हुए प्रचण्ड वेगयुक्त गड्ढे में से कोई चीज निकाल लेना कठिन था। गड्ढा चट्टानों के भीतर था और उसका समुद्र की तरफ का सिरा ऊँचा, ढाल और फिसलहा था। उतार के समय भी उसमें अथाह पानी रहता था। कौला गुफा के दर्शकों से कहा करती थी कि इसमें डाली हुई मछली समुद्र में कोसों दूर निकल जाती है। उसने गड्ढे का नाम राक्षसी गुफा रख छोड़ा था और वह उसमें से शैवाल निकालने का कभी भी प्रयत्न नहीं करती थी।

परन्तु कुन्दन इस बात को नहीं जानता था। जब उसने गड्ढे के उस अविश्वास्य फिसलहे सिरे पर अपना पैर जमाने की चेष्टा की तो कौला देखती रही। वहाँ स्थिर होकर कुन्दन ने थोड़ा-सा शैवाल खींचा। किस प्रकार वह यह काम कर सकता था कौला की समझ में न आया। परन्तु वह थोड़ी देर तक देखती रही और तब उसने उसे फिसलते देखा। कुन्दन फिसला और संभल गया। फिर फिसला और फिर सँभल गया।

कौला चिल्ला कर बोली, "कुन्दन मूर्ख, यदि तुम एक बार भी उसमें गिर गये तो फिर कभी भी न निकल सकोगे।"

कौन कह सकता है कि कौला ने यह बात उसे डराने के लिए कही या उसका-हृदय ही पसीजा और उसने कुन्दन की भयानक आपत्ति का अनुभव किया। वह स्वयं भी इसको नहीं समझ सकती थी। कुन्दन से उसे बड़ी घृणा थी परन्तु, साथ ही, अपनी आँखों के सामने ही उसे डूबते हुए देखने की इच्छा भी शायद वह नहीं कर सकती थी।

कुन्दन ने क्रोध से उत्तर दिया, "तुम अपना काम देखो। मेरी कोई चिन्ता न करो।"

"चिन्ता! कौन चिन्ता करता है तुम्हारी?" और यह कह कर कौला अपना काम करने लगी।

परन्तु जैसे ही वह अपना लम्बा आँकड़ा लेकर चट्टानों पर उतरी उसने सहसा 'छप्' का सा शब्द सुना। घूमते ही उसे दिखाई दिया कि लड़का गड्ढे की भँवरों और तरङ्गों में उलट-पुलट हो रहा है। समुद्र का वेग इतना बढ़ गया था कि लहरें बड़े जोर से उसके ऊपर तक आकर, एक प्रताप का-सा शब्द करती हुई चट्टानों से उतर कर समुद्र में जा मिलती थीं और फिर जब बाढ़ का पानी निकल जाता था तो गड्ढे की सतह क्षण भर के लिए किंचित् शान्त हो जाती थी। परन्तु तो भी बुद-बुदों का उठना और जल का उबलना बन्द न होता था, मानो गड्ढे के नीचे आग दहक रही हो। परन्तु यह अपेक्षाकृत शान्ति केवल क्षण भर के लिए ही होती थी, क्योंकि जैसे ही पहली लहर के फेन बन्द होते दूसरी फिर तुरन्त ही चट्टानों से आकर टक्कर मारती और उसके कुपित गर्जन से दिशाएँ गूँज जातीं।

क्षण भर में कौला गड्ढे के पास पहुँच गई। लहर के शान्त होने पर कुन्दन का शरीर उसकी ही तरफ बह आया। कौला ने देखा कि कुन्दन के सिर तथा मुख खून से रँगा हुआ है। वह जीवित था या मृत, कौला नहीं समझ सकी। उसने केवल उसके खून तथा सुनहरी बालों को ही देख पाया इसके बाद कुन्दन का शरीर समुद्र में लौटते हुए पानी के वेग से दूसरी तर

बह गया, परन्तु इस बार अतिरिक्त जल इतना अधिक नहीं था कि वह गड्ढे से बाहर बह जाता।

अगले ही क्षण कौला ने अपने आँकड़े से काम लिया। उसे कुन्दन के कपड़े में अड़का कर खींचा और तुरन्त ही नीचे की तरफ झुककर, अपने आँकड़े के लम्बे मुड़े हुए बेंटे का सहारा ले इसने उसे अपने दाहिने हाथ मे पकड़ने का प्रयत्न किया। पर वह उसे पकड़ न सकी, वह केवल छू सकी।

सामने से गर्जती हुई दूसरी भयङ्कर लहर आई और उसके ऊपर होकर वेग से चली गई। जब पानी उतर गया तथा उसका ज़ोर और तुमुल बन्द हो गया तो उसने देखा कि कुन्दन का शरीर आंकड़े का सहारा छोड़ कर फिसलहे सिरे पर आधा जल में तथा आधा बाहर लम्बा-लम्बा पड़ा हुआ है। तदनन्तर उसकी दृष्टि कुन्दन के चेहरे पर गई। कुन्दन की आँखें खुली हुई थीं और वह बेचारा अपने हाथों से 'छप्-छप्' करता हुआ निकलने का प्रयत्न कर रहा था।

कौला ने व्यग्रता से कहा, 'आँकड़े को पकड़लो लो कुन्दन, आँकड़े को पकड़ लो।" इसके साथ ही उसने अपने हाथों से उसके कुर्ते को दृढ़ता-पूर्वक पकड़ लिया।

कुन्दन ने कौला का आँकड़ा पकड़ने का प्रयत्न किया। इतने में अगली लहर आई और टकरा कर लौट गई। अब भी वह गड्ढे के शिलाफलक पर ही पड़ा था। परन्तु अगले क्षण ही कौला गड्ढे से एक-दो गज़ ऊपर की तरफ़ बैठी हुई थी और कुन्दन का रक्त-श्रावी सिर उसकी गोद में रक्खा हुआ था।

अब कौला क्या करे ? स्वयं तो वह उसे उठा कर ले नहीं जा सकती थी और पन्द्रह ही मिनट में समुद्र की लहर वहाँ तक भी आ पहुँचेगी। कुन्दन बिलकुल बेहोश और पीला हो गया था, उसके ज़ख्म से खूब खून

बह रहा था। कौला ने अत्यन्त कोमलता के साथ अपने हाथ से उसके मुँ पर से बालों को हटाया। साँस देखने के लिए धीरे-से उसके मुँह के ऊप झुकी। कौला ने उसे गौर से देखा। उसे मालूम हुआ कि कुन्दन सुन्दर है

[५]

कुन्दन की प्राण रक्षा के लिए इस समय कौला अपना क्या नहीं दे डालती? अब उसके लिए कोई भी वस्तु इतनी बहुमूल्य नहीं थी जितना कि कुन्दन का जीवन। परन्तु वह करे तो क्या करे? वह सोचने लगी, "दादा यदि चट्टानों पर चढ़ भी सकें, तो बड़ी कठिनाई से यहाँ तक आ सकेंगे। तब क्या इसे घसीट कर कुछ दूर ऊपर ले चलूँ, जिससे पानी की लहरें पास तक न आ सकें।

यही निश्चय कर कौला कुन्दन को उठा कर लाने लगी। उसको अपनी ताकत पर आश्चर्य हुआ। परन्तु, वास्तव में इस समय उसमें बहुत अधिक बल आ गया था। धीरे-धीरे बड़ी कोमलता के साथ ही, चट्टानों पर स्वय इस प्रकार गिरती-पड़ती जिससे कुन्दन को चोट न लगे वह उसे रेत के सिरे पर ऐसी जगह ले आई जहाँ अगले दो घंटे तक जल के पहुँचने की कोई आशङ्का नहीं थी।

यहाँ उसको दादा खड़ा था। वह दरवाजे से देख रहा था। कौला ने कहा, "कुन्दन सामने वाले गड्ढे में गिर कर चट्टानों से टकरा गया था। देखो इसके सिर में कितनी चोट आई है!"

मैलाकी ने उसके शरीर को देख कर कहा, "कौला, मैं तो समझता हूँ यह मर गया है।"

"नहीं दादा, अभी यह मरा नहीं है। लेकिन शायद यह मर रहा है। मैं शीघ्र खेत की ओर जाती हूँ।

"इसके सिर की तरफ देखो, कौला! वे लोग कहेंगे कि तुमने ही इसे मार डाला है।"

"कौन ऐसा कहेगा? क्या कोई इस तरह झूठ बोल सकता है? क्या मैंने ही इसे गड्ढे में से नहीं निकाला है?"

"इससे क्या? इसका बाप कहेगा कि तुमने ही इसे मारा है।

कोई चाहे भी कुछ कहे, कौला को उस समय अपना कर्तव्य साफ दिखाई दे रहा था। उसने सोचा, "मुझे शीघ्र ही गेंदा के खेत में जाकर आवश्यक सहायता प्राप्त करनी चाहिए। यदि दुनिया ऐसी ही बुरी है जैसी कि दादा बतलाते हैं तो वह वास्तव में इतनी बुरी है कि मैं उसमें और अधिक नहीं रह सकती। जो कुछ भी हो, मुझे अब अपने कर्तव्य के बारे में कुछ भी सन्देह नहीं है।"

इस प्रकार विचार कर कौला जितना शीघ्र अपने नङ्गे पैरों से चट्टानों पर चढ़ सकती थी चढ़ी। ऊपर पहुँच कर उसने चारों तरफ देखा कि शायद कोई मनुष्य दिखाई दे, परन्तु कोई भी दृष्टिगोचर न हुआ। अतएव वह यथाशक्ति गेंदासिंह के मकान की तरफ़ दौड़ी। समीप पहुँच कर उसने कुन्दन की मा को द्वार पर खड़ी देखा। उसने पुकारने का प्रयत्न किया परन्तु उसकी आवाज रुँध गई। अतः दौड़कर जाकर उसने कुन्दन की मा का हाथ पकड़ लिया।

कौला ने अपना हाँफना बन्द करने के लिए उसका हाथ अपने धड़कते हुए हृदय पर रख कर पूछा, 'वह कहाँ हैं?"

गेंदा की माँ भी मैलाकी तथा कौला के विरुद्ध कलह मे भाग लिया करती थी। प्रश्न सुनकर बोली, "किसे पूछती है? मुझे क्यों इस तरह आकर पकड़ रही है?"

तो वह मर रहा है । बस बता दिया ।"

कौन मर रहा ? क्या सैलाकी ? अगर उसकी हालत खराब है तो हम किसी आदमी को भेजे देते हैं ।"

"अरे, दादा नहीं, कुन्दन । वह कहाँ है—वह—मालिक ?"

यह सुनते ही कुन्दन की माँ निराश हो घबराहट से सहायता के लिए पुकारने लगी । सौभाग्य से गेंदासिंह उसी समय एक मनुष्य के सहित आ पहुँचा ।

कौला ने व्यग्रता से कहा, "अजी, डाक्टर को नहीं बुलाते ? डाक्टर को बुलाओ जल्दी से, डाक्टर को ।"

घबराहट में उसे नहीं मालूम हुआ कि डाक्टर बुलाया गया था नहीं ? कुछ ही मिनट बाद फिर, वह गेंदा, उसकी स्त्री तथा एक दूसरे आदमी को साथ लेकर खेतों में होती हुई गुफा की तरफ़ बढ़ी ।

चलते चलते उसकी आवाज़ कुछ ठीक हो गई, क्योंकि गेंदासिंह आदि उसकी बराबर तेज नहीं दौड़ सकते थे और उसे अच्छी तरह साँस लेने का अवकाश मिल जाता था । चलते २ ही उसने घटना का वृत्तान्त बतलाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसने अपनी बात बहुत कम कही । माता उसके पीछे ही लगी हुई जा रही थी और सुनते २ कह उठती थी, मेरे लड़के को मार डाला, मेरे लड़के को खा लिया," इत्यादि । फिर वह उसके जीवित होने के सम्बन्ध में सैकड़ों विक्षिप्त से प्रश्न करने लगी । परन्तु पिता बहुत कम बोलता था । वह मितवादी, गम्भीर परिश्रम तथा सच्चरित्र था, परन्तु क्रोध आने पर वह भी बड़ा कठोर हो जाता था ।

जैसे ही वे लोग गुफ़ा के मार्ग पर पहुँचे, दूसरे मनुष्य ने गेंदा के कान में कुछ कहा । सुनकर गेंदा ने कौला को रोक कर कहा, "अगर उसकी मृत्यु तुम्हारे द्वारा हुई है तो उसके जीवन के मूल्य में तुम्हारा ही जीवन लिया जाएगा ।"

यह सुनते ही माता चीख पड़ी, "मेरे लाल को मार डाला रे हाय" बेचारी कौला तीनों व्यक्तियों के मुख को देखती हुई सोचने लगी कि दादा का कहना ही सच निकला क्या? उन लोगों को यही सन्देह था कि कौला ने ही कुन्दन की जान ली है, जिसकी रक्षा करने के लिए वास्तव में उसने अपने जीवन की भी बाजी लगा दी थी।

भयव्याकुल नेत्रों से उनकी तरफ देख कर वह फिर उनके आगे-आगे चली। ऐसे अभियोग का वह उत्तर भी क्या दे सकती थी। यदि वे कहने लगते कि तूने ही उसे गड्ढे में धक्का देकर उसके सिर मे आँकड़ा मार दिया तो बेचारी क्या कह कर इसे मिथ्या प्रमाणित कर सकती थी?

गवाहों द्वारा प्रमाण देने के नियम को कौला नहीं जानती थी। वह अपने को बिलकुल उनके काबू में समझने लगी। परन्तु ढालू मार्ग पर दौड़ते समय उसका हृदय आशापूर्ण भावों से भरा हुआ था। कुन्दन को बचाने के लिए उसने उतना ही प्रयत्न किया था जितना वह अपने किसी भाई के लिए करती। इस प्रयत्न में जहाँ-जहाँ उसके हाथ-पैरों में चोट लगी थी। वहाँ से अब भी खून बह रहा था। एक बार तो उसने यहाँ तक विचार कर लिया था कि मैं भी इसके साथ गड्ढे मे मर जाऊँगी। वह सोचने लगी, "इतना सब होने पर भी कुन्दन को मार डालने का दोष ये लोग मेरे ही सिर मढ़ रहे हैं। सम्भव है वह जीवित हो, परन्तु बचकर भी वह क्या बता सकेगा? परन्तु नहीं, एक बार उसके नेत्र खुले थे और उसने शायद मुझे देख भी लिया था।" कौला को अपने लिए कोई भय नहीं था क्योंकि उसका हृदय उच्च भावों से पूर्ण था। परन्तु साथ ही वह घृणा, क्रोध और अवहेलना से भी भरा हुआ था।

[६]

नीचे पहुँच कर अपने घर के पास खड़ी हो वह इन लोगों के आने की प्रतीक्षा करने लगी जिससे वे उससे पहले ही कुन्दन के पास पहुँच जाएं। उनके आने पर उसने कहा, "वह है कुन्दन, और दादा भी उसी के पास हैं। जाओ उसे देख लो।"

सा[illegible]ता प. रो में ठोकरें खाते हुए पुत्र को देखने के [illegible]
परन्तु [illegible] जहाँ-की तहा खड़ी रही।

कु[illegible] जहाँ-का तहाँ लेटा हुआ था। वृद्ध मैलाकी एक लकड़ी के सहारे बड़ी कठिनता से उसके पास खड़ा था।

गेंदा और कुन्दन की माँ को देखकर उसने कहा, "कौला के जाने के बाद यह जरा भी नहीं हिला। मैंने इसके सिर के नीचे यह पुराना चिथड़ा लगा दिया था और जरा सी शराब भी देने की कोशिश की थी, पर इसने ली ही नहीं।"

पुत्र को देखकर पछाड़ खाकर माता चिल्ला पड़ी, "मेरा बेटा। मेरा लाल।" लड़के के पास झुकते हुए पिता ने कहा, "अरी, चुप हो जा। क्या इस तरह भिनभिनाने से इसे आराम हो जाएगा?"

तदन्तर एक-दो मिनट तक उसके मुख को देख कर गेंदा कड़ी दृष्टि से मैलाकी के मुख को देखने लगा। वृद्ध मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ था कि किस प्रकार इस तीव्र जिज्ञासा का उत्तर दे। उसने कहा, "वह बच जायगा। यह सब उसकी अपनी ही करतूत है।"

पिता ने पूछा, "उसके चोट किसने मारी है?"

"पानी के जोर से गिर कर उसने खुद ही चोट मारली है। मैं सच कह रहा हूँ।"

"झूठा!" पिता ने बूढ़े की तरफ देख कर कहा।

माता भी चिल्लाने लगी, "इन लोगों ने ही उसे मार डाला है, इन्होंने ही उसकी जान ली है।"

गेंदा ने कहा, "चुप क्यों नहीं हो जाती है। इन्हें जान के बदले जान देनी पड़ेगी।"

कौला ने झोपड़ी के सिरे के सहारे खड़ी-खड़ी सब बातें सुनीं, परन्तु वह अपने स्थान से हिली नहीं। ये लोग जो चाहें सो कहें। वे इसे

हत्या ही समझें। वे उसे और उसके दादा को जेलखाने तक पहुँचा दें और वहाँ से फिर शायद दोनों को बधस्थान को भी जाना पड़े, पर इस सब से क्या ? क्या वे उसके भीतर के भावों को भी छू सकेंगी ? उसने कुन्दन को बचाने में कोई बात रख नहीं छोड़ी थी और अन्ततः उसने उसे बचा लिया था।

कौला को अपनी उस दुर्भावना और धमकी की याद थी। वे वास्तव में बड़े बुरे शब्द थे। पर उसके बाद से ही उसने कुन्दन का जीवन बचाने के लिए अपने को सकट में नहीं डाल दिया था क्या ? उनके जीवन में जो आवे सो कहें।

इसके बाद पिता ने अपने पुत्र के सिर और कधों को गोदी में उठा कर दूसरों से उसे मार्ग पर ले चलने के लिए सहायता मांगी। उन्होंने परस्पर मिल कर उसे बड़ी सावधानी से उठाया और वे उसे उस तरफ ले चले जिस तरफ कौला खड़ी थी। निश्चल भाव से वह उनके काम को देखती रही। वृद्ध मनुष्य भी अपनी लकड़ी के सहारे उनके पीछे-पीछे घिसटता हुआ आ रहा था।

जब वे लोग झोपड़ी के सिरे पर पहुँचे, कौला ने कुन्दन के मुख की ओर देखा—देखा कि वह बहुत ही पीला हो रहा है, रक्त का वहाँ चिन्ह भी नहीं मालूम होता। परन्तु उसका टेढा-मेढा ज़ख्म साफ दिखाई दे रहा था और व्रण के चारों तरफ की त्वचा नीली पड़ गई थी। उसके ईषत् पिंगल केश अब भी उसी प्रकार पीछे को लटक रहे थे। आह ! उसके नेत्रों को कुन्दन का वह व्रणयुक्त पीला मुख कितना सुन्दर मालूम हो रहा था। कौला ने अपना मुख फेर लिया। वह अपने स्थान से हिली नहीं और न वह कुछ बोली ही।

परन्तु जिस समय वे झोपड़ी से निकल गए, उसे एक शब्द सुनाई दिया जिससे उसका हृदय हिल उठा। अभी तक वह सहारे से खड़ी हुई थी, अब उसने अपना सिर, मानों सुनने के लिए, उठाया। इसके पश्चात्

वह उनका अनुसरण करने के लिए चली। सचमुच वे लोग मार्ग की तले में रुक गए थे और उन्होंने कुन्दन के शरीर को चट्टानों पर रख दिया था कौला को फिर वही शब्द सुनाई दिया। उसे मालूम हुआ जैसे कोई एक दीघ—अति दीर्घ—उच्छ्वास छोड़ रहा है। अब उससे रुका न गया और वह किसी की परवाह न करके शीघ्र क्षत मनुष्य के शरीर के पास दौड़ गई।

"वह अभी भी जीवित है" उसने कहा,—"वहाँ सामने—वह मरा नहीं है।" जैसे ही उसने ये शब्द कहे, कुन्दन ने अपनी आँखें खोल दीं और वह किसी को अपने इधर उधर ढूँढने लगा।

माता ने कहा, "मुँह से बोलो, कुन्दन बेटा। ज़रा बोलो तो।"

कुन्दन ने माता की तरफ मुँह फेरा। वह मुस्कराया और फिर उन्मत्त की भाँति घूर कर देखने लगा।

पिता ने कहा, "अब कैसे हो बेटा?" पुत्र ने यह सुन कर पिता की ओर अपना मुँह फेरा। ऐसा करने में उसकी दृष्टि कौला पर जा पड़ी। वह बोल उठा, "कौला, कौला।"

उपस्थित जनों में अब यह साबित करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं थी कि कौला ने उसके साथ शत्रुता नहीं की है। और सच यह है कि कौला इसी को अपनी पूर्ण विजय समझती थी। इस शब्द ने उसका प्रमाण दे दिया और वह अपनी झोपड़ी को लौट गई।

कौला ने दादा से कहा, "कुन्दन मरा नहीं है, और मैं समझती हूँ अब वे लोग इस विषय मे कुछ नहीं कहेंगे कि हमने उसे हानि पहुँचाई है।"

वृद्ध मैलाकी ने अपना सिर हिला दिया। उसे इस बात पर प्रसन्नता थी कि लड़का मर नहीं गया है। वह उसकी जान लेना नहीं चाहता था परन्तु वह यह अच्छी तरह समझ रहा था कि लोग क्या कहेंगे। मनुष्य

जितना अधिक धन-हीन होता है दुनियाँ उतना ही अधिक उसे कुचलने के लिए पैर बढ़ाती है। कौला उसे तसल्ली दे रही थी। उसे स्वयं भी अब तसल्ली हो गई थी।

कौला ने हाल जानने के लिए खेत पर जाना चाहा, परन्तु उसे साहस न होता था। जब ही उसने यह सोचा उसके धैर्य ने जवाब दे दिया। वह फिर अपना काम करने चली गई और शैवाल खींच-खींच कर पहली जगह रखने लगी। काम करते-करते उसने देखा कि कुन्दन का टट्टू अब भी अपने स्थान पर खड़ा है। वह गई और भीतर से थोड़ा-सा चारा लाकर उसने जानवर के सामने डाल दिया।

[७]

गुफा में अंधकार हो गया था पर वह अब भी घास निकाल ही रही थी। इतने में ही उसने एक मन्दज्योति लालटैन के प्रकाश को दरार से नीचे आते देखा। यह अपूर्व बात थी, क्योंकि मैलाकी की गुफा मे शायद ही कभी कोई लालटैन आती थी। धीरे-धीरे लालटैन आई और अन्धकार में पथ के सिरे पर कौला को एक मनुष्याकृति खड़ी हुई दिखाई दी। वह उसके पास गई और उसने देखा कि गेंदासिंह खड़े हैं।

गेंदा ने कहा, "कौन ? कौला ?"

"हाँ, कौला ही हूँ। अब कुन्दन की तबियत कैसी है ?"

"बस तुम सीधी उसके पास चली ही चलो। बिना तुम्हें देखे वह ज़रा भी नहीं सोएगा। कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। बस, चली चलो।"

"जो मेरी ज़रूरत है तो चली चलूँगी।"

गेंदासिंह ने क्षणभर प्रतीक्षा की कि कौला तैयार हो आई। परन्तु कौला को किसी तैयारी की ज़रूरत नहीं थी। समुद्र से शैवाल निकालने के कारण वह खारे पानी से बिलकुल नहा रही थी और उसके छोटे-छोटे बाल उच्छृङ्खलता से सिर के इधर-उधर बिखरे हुए थे। परन्तु जिस दशा में भी वह थी, वह तैयार थी।

उसने कहा, दादा सोने चले गए हैं और यदि आपकी इच्छा हो तो अब मैं आपके साथ चल सकती हूँ ।"

तदनन्तर गेंदा मुड़ कर उसके पीछे-पीछे चलने लगा । वह आश्चर्य कर रहा था कि सब स्त्रियों से भिन्न अपना जीवन कौला किस प्रकार व्यतीत करती है ।

चट्टान की चोटी पर पहुँच कर गेंदा उसका हाथ पकड़ कर ले चलने लगा । कौला इसका अर्थ न समझी, परन्तु उसने उसके हाथ से अपना हाथ छुड़ाने का कोई प्रयत्न न किया । वह चट्टान से गिर जाने के विषय में कुछ कहता जा रहा था, पर उसकी आवाज़ इतनी धीमी और अस्फुट थी कि वह कुछ समझ न सकी । परन्तु वास्तव में गेंदा अब जानता था कि कौला ने ही उसके पुत्र की रक्षा की है और उसे दुःख था कि बालिका को धन्यवाद देने के स्थान में उसने उसे वेदना पहुँचाई । वह अब उसे अपने हृदय में स्थान दे रहा था, और अपने शब्दों के अभाव के कारण वह अपने स्नेह को इस मूक प्रकार से प्रकट कर रहा था । उसने उसका हाथ इस प्रकार पकड़ लिया जैसे कोई किसी छोटे बालक का हाथ पकड़ लेता है—और कौला चुपचाप उसके साथ-साथ चली गई ।

खेत के पास पहुँच कर क्षण भर रुक कर गेंदा ने कौला से कहा, "बेटी, तुम्हें देखे बगैर उसे धीरज न होगा । पर तू वहाँ बहुत देर मत ठहरना, क्योंकि डाक्टर ने बतलाया है कि वह बड़ा कमज़ोर होगया है और उसे नींद आ जाना बड़ा ज़रूरी है ।"

कौला ने केवल अपना सिर हिला दिया और तब दोनों मकान में प्रविष्ट हुए । इससे पहले कौला कभी उस मकान के भीतर न गई थी । वह विस्मित नेत्रों से पाकशाला के सामान को देखने लगी । उसके हृदय में अपने भावी अदृष्टि के सम्बन्ध में इस समय कोई विचार उत्पन्न हुआ या नहीं—यह नहीं कहा जा सकता । परन्तु यहाँ एक क्षण न ठहर कर वह गेंदासिंह के साथ शयनागार में पहुँची । कुन्दन अपनी माता के पलग पर लेटा था ।

कुन्दन ने पूछा, "क्या कौला है ?"

माता ने उत्तर दिया, "हाँ कौला ही है। तुम उससे बातें करो।"

कुन्दन ने कहा, "कौला यह तुम्हारी कृपा का ही फल है कि मैं इस समय जीवित हूँ।"

पिता ने अपने नेत्रों को कौला पर से हटा कर कहा, "कौला के इस अहसान को मैं कभी नहीं भूल सकता—कभी नहीं भूल सकता।"

माता ने अपनी करधनी को मुँह पर रख कर कहा, "हमारे और कोई बेटा नहीं था।"

कुन्दन ने कहा, "कौला, अब तो तुम मुझे अपना मित्र बना सकोगी ?"

कौला चुप रही। इतने मनुष्यों के सामने होने से तथा उनकी बातें सुनकर वह सकुचित और निर्वाक् रह गई। इसके साथ ही बड़े भारी पलग, दर्पण तथा कक्ष की उन आश्चर्यकारी वस्तुओं को देख कर; जिनके विषय मे उसने कभी सुना भी नही था, वह अपनी क्षुद्रता पर विचार करने लगी। परन्तु उसने धीरे-से कुन्दन के पास जाकर अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया।

कुन्दन ने फिर कहा, "मैं जाकर शैवाल निकाल दिया करूँगा परन्तु वह सब तुम्हारे ही लिए होगा।"

माता बोली, "नहीं, अब तुम उस विपज्जनक स्थान में कभी नहीं जाना। जो तुम हम से बिछुड़ जाते तो हम क्या करते ?"

गेंदा ने कहा, "अब कौला को जाने दो।" कुन्दन ने कौला के हाथ का चुम्बन किया और कौला उसकी इस क्रिया पर उसकी तरफ देखती हुई सोचने लगी कि कुन्दन में अलौकिक सुन्दरता है। वह बोला, "कौला, आशा है तुम कल भी आकर हम लोगों से मिलोगी।"

इसका कौला ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसकी मा के साथ-साथ कमरे के बाहर चल दी। रसोई घर में पहुच कर माता ने चाय, गाढ़ा दूध,

गरम रोटी इत्यादि खाद्य पदार्थ दिए। नहीं कहा जा सकता कि कौला को खाने की उस रोज इतनी अधिक परवाह थी, परन्तु वह इतना अवश्य सोचने लगी थी कि गेंदासिंह के कुटुम्ब के लोग बड़े सज्जन हैं। गेंदा ने कहा था, "कौला के अहसान को कभी नहीं भूल सकता।" ये शब्द उसी क्षण से कौला के हृदय पर अङ्कित हो गए थे और रात-भर उसके कानों में मानों गूँजते रहे। अब उसे यह सोच कर कितनी प्रसन्नता हो रही थी कि कुन्दन उस गुफा में आया था। उसके जीवन के बचने में अब कोई शङ्का नहीं थी, और चोट! ..उस जैसे हृष्ट, पुष्ट और साहसी युवक के लिए यह कौन सी बात थी।

जब कौला जाने लगी तो कुन्दन की मा ने कहा, "कुन्दन के पिता तुम्हें पहुँचा आवेंगे।" परन्तु कौला ने इस पर ध्यान न दिया। प्रकाश हो अथवा अन्धकार, गुफा को जाने के लिए वह अपना मार्ग मालूम कर सकती थी।

उसे अकेली ही जाते देख कर कुन्दन की मा ने कहा, "कौला, तू मेरी बच्ची है। मैं सदा तुझे इसी प्रकार समझूंगी।"

कौला भी चलते-चलते सोचने लगी, "ऐं, कैसे मैं इनकी बच्ची हो सकती हूँ कैसे?"

* * * *

अधिक कहानी बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। पाठक स्वयं समझ गये होंगे। समय बीतने पर वह बड़ा भवन तथा खेत वाले मकान की समस्त आश्चर्यजनक वस्तुएँ उसकी अपनी हो गईं। लोग कहा करते थे कि कुन्दन ने समुद्र की एक जलपरी से विवाह कर लिया है। परन्तु जब कभी वह इस बात को सुन पाती तो वह उसे पसन्द करती या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। जब कभी कुन्दन ही उसे जलपरी कह देता तो वह उस पर नाराज होने लगती और अपने काले बालों को छितरा कर अपने खुले हाथ से उसे थप्पड़ मारने के लिए दौड़ती।

वृद्ध मैलाकी ने भी अपने जीवन के बचे-खुचे दिन गेदासिंह की छत के नीचे काटे। गुफा और सामुद्रिक शैवाल का अधिकार गेदा के आधीन समझा जाने लगा। और, कभी किसी पड़ोसी ने अब तक उसके इस अधिकार पर कोई विवाद नहीं किया।*

शर्त

[१]

शरद ऋतु की एक अँधेरी रात थी। वृद्ध महाजन रईस अपने कमरे में इधर से उधर घूम रहा था और कुछ सोचता जाता था। उसे पन्द्रह वर्ष पहले की याद आ रही थी जब कि एक दिन उसने अपने मित्रों को प्रीति-भोज दिया था। भोज में अनेक चतुर और बुद्धिमान लोग सम्मिलित थे और आपस में अनेक प्रकार की मनोरंजन की बातें हुई थीं। बहुत-सी बातों के बीच में मृत्युदण्ड का भी विषय उठा। अधिकांश अतिथि लोग, जिनमें कितने ही सम्पादक, लेखक तथा भिन्न-भिन्न विषयों के विशेषज्ञ थे, मृत्युदण्ड के विपक्ष में रहे। उनकी समझ मे मृत्युदण्ड एक पुराना और असमयानुकूल दण्डविधान था—ईसाई शासन के अयोग्य और नीति तथा आचरण के एकदम विपरीत। अतिथियों मे से कुछ का विचार था कि मृत्युदण्ड का सर्वत्र बहिष्कार करके उसके स्थान मे आजीवन कारावास का विधान होना चाहिए।

गृहस्वामी ने कहा—"मैं आपसे बिल्कुल सहमत नहीं हूँ। जहाँ तक मुझे याद है मुझे कभी मृत्युदण्ड या कारावास नहीं हुआ। परन्तु ऐसे प्रसगों में पूर्वानुमति से यदि कुछ कहा जा सकता है तो मैं कहूँगा कि आजीवन कारावास की अपेक्षा मृत्युदण्ड कहीं अधिक हितकर्म और नीति-सम्मत है। फाँसी पर लटकाने से मनुष्य तुरन्त मर जाता है, परन्तु जेल मे डाल कर आप उसकी धीरे-धीरे जान खींचते हैं। आप ही बतलाइए, कौन अधिक दयाशील है? वह जो कुछ क्षण के भीतर ही आपके प्राण ले लेता है अथवा वह जो धीरे धीरे वर्षों तक, उनको बराबर आपके भीतर से निकलता रहता है?"

एक अतिथि बोला—यह दोनों ही नीति-विरुद्ध हैं, क्योंकि दोनों का अभिप्राय एक ही है—मनुष्य का जीवन लेना। आपकी शासन-व्यवस्था

ईश्वरीय तो है नहीं। फिर क्या अधिकार है आपको कि जिस वस्तु को आप लौटा नहीं सकते उसे केवल अपनी इच्छा के कारण दूसरे से जबरदस्ती छीने ?"

उपस्थित सज्जनों में एक महाशय वकील भी थे। इनकी आयु लगभग पच्चीस वर्ष की होगी। जब उनकी सम्मति पूछी गई तो उन्होंने कहा— मृत्युदण्ड और आजीवन कारावास, वास्तव में, दोनों एक से ही नीति विरुद्ध हैं, परन्तु मुझे यदि दोनों में से किसी एक को पसन्द करना पड़े तो मै कारावास को ही पसन्द करूँगा। किसी-न-किसी तरह जीते रहना न जीने से फिर भी अच्छा है।"

इसके पश्चात् एक अच्छा शास्त्रार्थ हो पड़ा। महाजन, जो उस समय अब से पन्द्रह वर्ष छोटा था, उत्तेजित और अधीर हो उठा। मेज के ऊपर अपना हाथ पटकते हुए उसने वकील की ओर घूम कर कहा—"बिलकुल झूठ बात है मैं दो लाख की शर्त लगाने को तैयार हूँ। आजीवन! आप एक ही कोठरी में बराबर पांच साल भी बन्द नहीं रह सकते।"

अच्छा, "यदि आप शर्त लगा रहे हैं तो मैं भी कहता हूँ, मैं पाँच साल नहीं पन्द्रह साल तक रह सकता हूँ।"

"पन्द्रह! अच्छा तो फिर तय—"महाजन ने उत्तेजना के भाव से कहा—"मित्रो, मैं इन्हें दो लाख रुपया दूँगा।"

इस प्रकार एक साधारण मजाक से इस उन्मत्त और भयानक शर्त की परिणति हुई। स्वेच्छावृत्त और दुर्ललित महाजन के पास उस समय लाखों की कोई गिनती नहीं थी। वह अपने गौरव के आनन्द में आपे से बाहर था। भोजन के समय उसने हँसी के भाव से वकील से कहा—"मेरे मित्र आप अभी नवयुवक हैं। अपनी उत्तेजना को सँभालए, जिससे बाद में पछतावा न हो। दो लाख मेरे समीप कुछ नहीं है। परन्तु आप अपने जीवन के सर्वश्रेष्ठ भाग के तीन चार वर्ष व्यर्थ में नष्ट करने का इरादा कर रहे हैं। मैं कहता हूँ, तीन चार, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इससे अधिक

आप कदापि नहीं रह सकेंगे। साथ ही यह भी याद रखिए कि जबरदस्ती के कारावास की अपेक्षा अपनी इच्छा से स्वीकार किया हुआ कारावास कहीं अधिक कठिन और कष्टप्रद है। यह विचार ही कि आप इच्छा होने पर किसी समय भी अपने को मुक्त कर सकते हैं आपके बन्दी जीवन को सदा दुःख देता रहेगा। मुझे आप पर तरस आता है।"

इस समय वही महाजन अपने कमरे के एक कोने से दूसरे कोने में चक्कर लगा रहा था और चिन्ता कर रहा था।

(२)

वह सोचता था .. ..

"मैंने यह शर्त क्यों बदी। क्या लाभ हुआ? वकील के जीवन के पन्द्रह वर्ष नष्ट हुए और मैं दो लाख रुपये खो रहा हूँ। क्या इस सब से संसार को विश्वास हो जाएगा कि मृत्युदण्ड कारावास से अच्छा है या बुरा है? कैसा वाहियात और भद्दा मालूम होता है। रोटी लगकर मुटाए हुए आदमियों की सी मेरी बात थी। और वकील की केवल धनलोलुपता की। बस, इससे अधिक और कुछ नहीं।"

फिर भोज के बाद जो कुछ हुआ था उसकी महाजन को याद आई। यह निश्चित हुआ था कि महाजन के ही मकान मे, बगीचे की तरफ की एक कोठरी में वकील अपनी कारावधि बिताए और उसके ऊपर कठोर निरीक्षण और पूरी चौकसी रक्खी जावे। यह तय हुआ था कि इस अवधि के भीतर उसे कोठरी से बाहर नहीं निकलने दिया जाएगा और वह किसी से मिल-जुल नहीं सकेगा— मनुष्य का शब्द भी नहीं सुन सकेगा। परन्तु उसे समाचार-पत्र और मित्रों के पत्र आदि मिल सकेंगे। वह गाने बजाने का सामान रख सकता था, पुस्तकें पढ़ सकता था, शराब और तम्बाकू पी सकता था। प्रतिज्ञा के अनुसार वह एक खिड़की के द्वारा, जो इसी अभिप्राय से बनाई गई थी, शेष सृष्टि के साथ संवाद कर सकता था, परन्तु खामोशी के साथ—मूक और निश्चल रूप में प्रत्येक आवश्यक वस्तु जैसे पुस्तकें शराब,

खाद्य-सामग्री आदि, उसको एक छोटा-सा पुर्जा लिख भेजने से मिल सकता था, जिसे उसको खिड़की से गिरा देना होता था। प्रतिज्ञा-पत्र में उस प्रत्येक छोटी और बड़ी बात का उल्लेख किया गया था जिससे वकील का जीवन अधिक से अधिक एकान्त और विविक्त हो सकता था, और इस प्रतिज्ञा-पत्र के अनुसार वकील वाध्य था कि वह पूरे पन्द्रह वर्ष—१४ नवम्बर सन् १८७० के बारह बजे से १४ नवम्बर सन १८८५ के बारह बजे तक-कोठरी में बन्द रहे। कोठरी से निकल भागने की वकील की जरा सी भी कोशिश, चाहे वह निश्चत समय से दो ही मिनट पहले हो, महाजन के दो लाख रुपया देने की उसकी जिम्मेदारी से मुक्त करती थी।

कारावास के प्रथम वर्ष में वकील को, जहाँ तक उसके पुर्ज़ों से पता चलता था, अपनी एकान्तता और जीवन की निर्विशेषता से बड़ा कष्ट पहुँचता था। रात और दिन उसके कमरे से पियानो की आवाज आती रहती थी। शराब और तम्बाकू से उसने किनारा कर लिया था। उसने लिखा था—शराब पीने से इच्छाएँ बढती हैं और इच्छाएँ एक क़ैदी की परम शत्रु हैं। इसके अतिरिक्त, और किसी बात से इतनी अधिक झुँझलाहट नहीं होती जितनी सदैव ही अच्छी शराब पीते रहने से।

बराबर तम्बाकू पीते रहने से उसकी कोठरी की वायु खराब होती थी। पहले वर्ष में वकील को हल्की और रोचक पुस्तकें पढने को भेजी गईं—पेचीदे और सङ्कीर्ण प्रेमरस के उपन्यास, पाप और पाप के कुतूहल आदि की कहानियाँ, सुखान्त प्रहसन इत्यादि।

दूसरे वर्ष पियानो की ध्वनि बिलकुल नहीं सुनाई दी और वकील ने केवल श्रेष्ठ और प्राचीन साहित्य के ग्रन्थों के लिए ही इच्छा प्रकट की। पाँचवें वर्ष पुनः सगीत सुनाई दिया और बन्दी ने शराब माँगी। जो लोग उसके निरीक्षण के लिए नियुक्त थे उन्होंने बतलाया कि उस वर्ष भर उसने खाने-पीने मदिरा-पान और चारपाई पर पड़े रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया। वह प्राय. जम्हाइयाँ लिया करता और क्रोध में अपने-आप ही कुछ बातें किया

करता। पुस्तकें उसने बिलकुल नहीं पढ़ीं। कभी-कभी रात को वह दीपक के सामने लिखने बैठ जाता और घंटों लिखा करता, फिर दिन निकलने पर सब को फाड़ डालता। अनेक बार मालूम हुआ कि वह रोता भी था।

छठे वर्ष के पिछले भाग में बन्दी ने बड़े उत्साह के साथ दर्शन, इतिहास तथा भिन्न-भिन्न भाषाओं का अध्ययन करना आरम्भ किया। उसकी अध्ययन-क्षुधा इतनी अधिक बढ़ी कि महाजन को उसके लिए पुस्तकें प्राप्त करना कठिन हो गया। चार वर्ष के भीतर उसे वकील की प्रार्थना पर, लगभग छै सो ग्रन्थ मँगवाने पड़े। इसी उन्मत्त उत्साह के समय में एक बार महाजन का उसको एक छोटा सा पत्र मिला, जिस मे लिखा था— प्रिय काराध्यक्ष! मैं अपनी इन पक्तियों को छै भिन्न-भिन्न भाषाओं मे लिख कर भेजता हूँ। कृपया इन्हें निपुण भाषाविज्ञों को दिखाना। व इनको पढे और यदि उन्हे इनमे कोई भी भूल या अशुद्धि न मालूम हो तो, मेरी तुम से प्रार्थना है कि बाग में एक बन्दूक छुड़वा देना। उसकी आवाज से मैं समझ जाऊँगा कि मेरी मेहनत बेकार नहीं गई। प्रत्येक देश और काल के प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न भाषाओं में बोलते और व्यवहार करते हैं, परन्तु उन सब के भीतर समरूप से एक ही धारा प्रवाहित होती रहती है। आह! यदि तुम मेरे उस अलौकिक आनन्द की कल्पना कर सकते जिसका मैं इस समय अनुभव कर रहा हूँ—अब, जब कि मैं उन सब को समझ कर हृदयगम कर सकता हूँ।

बन्दी की इच्छा पूर्ण हुई। बगीचे मे महाजन की आज्ञा से दो बार बन्दूक का शब्द सुनाई दिया।

इसके बाद दसवाँ वर्ष बीतने पर वकील चुपचाप निश्चल भाव से अपनी मेज़ के सामने बैठा रहता और केवल इंजील पढ़ा करता। महाजन को इस बात पर प्रायः आश्चर्य होता कि जिस मनुष्य ने चार वर्ष के भीतर छै सौ भारी-भारी तथा कठिन और गम्भीर विषयों के ग्रन्थ छान डाले, उसे इस समय केवल एक अति सरल और पतली-सी पुस्तिका के पढ़ने में एक वर्ष के

लगभग लग जाए। तत्पश्चात्, इंजील का अध्ययन समाप्त होने पर, धर्म-ग्रन्थों तथा भिन्न भिन्न धर्मों के इतिहास का अध्ययन आरम्भ हुआ।

कारागार जीवन के अन्तिम दो वर्षों में वैदी ने असाधारण और बिलकुल असमीक्ष्य रूप से पढा। कभी वह प्राकृतिक विज्ञान की पुस्तकें पढता, कभी बायरन और शेक्सपियर को पढता। प्रायः उसके पास से पुर्जे आते जिनमें वह एक साथ ही रसायन शास्त्र और वैद्यक-ग्रन्थ, उपन्यास तथा दर्शन और धर्मशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकों की आकांक्षा करता। उसकी पढ़ाई कुछ इस प्रकार की थी मानों वह समुद्र में नष्ट पोत के भग्नावशेषों के बीच मे तैरता उतराता हो और जीवन-रक्षा की चिन्ता में जिस किसी वस्तु पर भी उसकी दृष्टि जाती है उसी को पकड़ने को व्याकुल हो उठता है।

[३]

महाजन इन तमाम बातों को याद करता था और सोचता था। वह सोच रहा था—"कल बारह बजे वह अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेगा। प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे उसको दो लाख देने पड़ेंगे। यदि मैं देता हूँ तो बस मेरा तो निपटारा हो गया। हमेशा के लिए तबाह हो जाऊँगा।"

पन्द्रह वर्ष पहले उसके लाखों की कोई गिनती न थी। परन्तु इस समय वह स्वयं अपने मन से यह प्रश्न करते डरता था—"मैं किसका अधिक गर्व कर सकता हूँ, रुपये का या अपने ऊपर चढ़े हुए ऋणों का।"

जुआ खेल कर, सट्टेबाजी करके, और अपनी उस उछखलता के कारण जिससे वह बुढ़ापे मे भी मुक्त नहीं हो सका था, उसका व्यवसाय धीरे-धीरे नष्टप्राय हो गया था। वह पुराना निशङ्क, आत्मनिर्भर और गर्वीला व्यवसायी नहीं, बल्कि अब एक साधारण महाजन रह गया था और बाजार के जरा-जरा से उतार चढ़ाव पर उसे घबराहट होती थी। अपने सिर को दोनों हाथों से पकड़ कर उसने कहा—"ओह! वह मूर्खतावाली शर्त! वह मर ही क्यों न गया। अभी चालीस ही का तो है। मेरी एक-एक पाई मुझ से निचोड़ कर शादी कर लेगा, जीवन-भर मौज उड़ाएगा, सट्टेबाजी करेगा, और मैं

एक भिखारी होकर यह सब देखूंगा और जलन से मरा करूंगा। रोज वह मुझ से कहा करेगा, मेरा यह सब सुख-वैभव तुम्हारे ही कारण है। मुझे भी तुम अपनी कुछ सहायता करने दो। नहीं, नहीं, यह सब मेरे सहन के बाहर है। बस, एक ही उपाय है, एक ही उपाय है, इस शर्मिन्दगी से बचने का-यह मनुष्य किसी तरह मर जाए।"

घड़ी में अभी तीन का घंटा बजा था। महाजन सुन रहा था। घर में हर कोई सोया हुआ था और सन्नाटा इतना था कि बाहर पाले से लदे हुए पेड़ों में हवा की मन्द सनसनाहट के अतिरिक्त और कुछ सुनाई न देता था। बहुत धीरे-धीरे, बिना कोई शब्द किए हुए, उसने अपने लोहे के सन्दूक में से उस द्वार की चाबी निकाली जो आज पन्द्रह वर्ष से नहीं खुला था। फिर अपना ओवरकोट पहन कर वह मकान से बाहर निकला। बगीचे में शीत और अन्धकार। ओस से भीगी हुई वायु की तीक्ष्ण लहर गुर्रा रही थी और वृक्षों को चैन नहीं लेने देती थी। अपनी ईक्षण-शक्ति पर भरसक जोर देने पर भी महाजन को न भूमि दिखाई देती थी, न श्वेत पत्थर की मूर्तियाँ और न बगीचे के वृक्ष। बाग के पार्श्व को प्राप्त कर उसने दो बार चौकीदार को आवाज दी। परन्तु कोई उत्तर न मिला। चौकीदार मौसम की निष्ठुरता से त्राण पाने के लिए कहीं रसोई-घर आदि में जाकर सो रहा था।

महाजन सोचने लगा—"यदि साहस करके मैं इस समय अपना काम बना लूँ तो सबसे पहले लोग चौकीदार पर ही सन्देह करेंगे।"

अन्धकार में सीढ़ियों और द्वार को टटोल कर वह बड़े कक्ष में पहुँचा। तब एक तंग से रास्ते में पहुँच कर उसने दियासलाई जलाई। वहाँ प्राणी का आभास भी न था। एक चारपाई पड़ी थी, परन्तु उस पर बिस्तरा न था और एक लोहे की अङ्गीठी अपनी कृष्णकाय गम्भीरता से एक कोने में सो रही थी। बन्दी की कोठरी के द्वार पर जो जो ताले लगाए गए थे वे जैसे के-तैसे लगे हुए थे।

दियासलाई के जल चुकने पर वृद्ध मनुष्य ने उद्वेग से काँपते हुए छोटी खिड़की के भीतर झाँका। बन्दी की कोठरी में एक मोमबत्ती धुँधला प्रकाश

कर रही थी। बन्दी स्वय अपनी मेज के किनारे एक कुर्सी पर बैठा था। केवल उसकी कमर, उसके सिर के बाल और उसके हाथ दिखलाई देते थे। खुली हुई पुस्तकें मेज पर, कुर्सियों पर और भूमि पर फैली पड़ी थीं।

पाँच मिनट बीत गए। परन्तु बन्दी एक बार भी न हिला। पन्द्रह साल के एकान्त कारावास ने उसको निश्चेष्ट बैठा रहना सिखला दिया था। महाजन ने खिड़की पर धीरे-से अपनी उँगली से खुटखुटाया, पर इसके उत्तर मे बन्दी की ज़रा सी चेष्टा तक न दिखलाई दी। तब महाजन ने सावधानी से तालों को खोला और चाबियों को तालों में लटका दिया। पन्द्रह वर्ष मे तालों में जँग लग गई थी, जिसके कारण कुछ शब्द हुआ और द्वार ने भी अपनी झुँझलाहट का परिचय दिया। महाजन ने समझा कि इस शब्द से बन्दी तुरन्त उछल कर चिल्ला पड़ेगा और उसका पदशब्द सुनाई देगा। परन्तु तीन मिनट तक कोठरी के भीतर वैसी ही स्तब्धता रही जैसी कि पहले थी। महाजन ने सोचा, अब भीतर चलना चाहिए।

मेज़ के किनारे साधारण मनुष्यों से भिन्न एक नर-आकृति बैठी हुई थी। महाजन ने अपने सामने मनुष्य का केवल एक ढाँचा देखा जिसके ऊपर, मालूम होता था, खाल मढ़ी हुई है। स्त्रियों के जैसे लम्बे-लम्बे घूमे हुए बाल थे और उलझी हुई दाढ़ी। चेहरे का रग पीला, मिट्टी की भाति था, गाल भीतर को घुसे हुए, कमर लम्बी और तग। जिस हाथ पर वह अपना सिर टेके हुए था वह इतना दुबला और चर्मभूत हो गया था कि देखने से दुःख होता था। उसके बाल सफेद हो चले थे और उसके जराजन्य दुर्बल मुख को देखकर विश्वास करना कठिन था कि इसकी आयु अभी चालीस ही वर्ष की है मेज़ पर उसके झुके हुए सिर के नीचे एक कागज़ का पन्ना रक्खा हुआ था जिस पर छोटे-छोटे अक्षरों मे कुछ लिखा हुआ था।

महाजन ने अपने मन में कहा, "अभागा बेचारा! शायद यह सो गया है और इस समय लाखों का स्वप्न देख रहा है। मुझे शायद कुछ भी न करना होगा। इसको उठा कर चारपाई पर पटक देने और आधा मिनट तक तकिए से पीटने से ही इसका काम तमाम हो जायगा और फिर अच्छी से

अच्छी मृतक-परीक्षा भी नहीं बतला सकेगी कि इसकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं हुई है।

परन्तु अपने संकल्प को कार्यरूप में परिणत करने से पहले महाजन को उत्सुकता हुई कि बन्दी के सामने रखे हुए कागज़ को पढ़े। बेचारे को क्या मालूम था कि इसके बाद वह और कुछ नहीं लिख सकेगा। उसके अन्तिम लेख को इस समय पढने के कौतूहल को रोकने की महाजन ने चेष्टा नहीं की। फाँसी लगाने से पहले अपराधी को कुछ कहने का अवकाश दिया जाता है, इसी लिए कि उसके मरने से पहले उसे सब कोई सुनें। महाजन भी बन्दी को यह अधिकार देना चाहता था। कैसा अच्छा विनोद है।

महाजन ने मेज़ से कागज़ उठाया और पढने लगा—"कल रात को बारह बजे मुझे मुक्ति मिल जायगी। मुझे लोगों से मिलने-जुलने का अधिकार प्राप्त होगा। परन्तु इस कोठरी के छोड़ने से पहले मैं तुम से कुछ कहना चाहता हूँ। अपनी आत्मा को गवाही देकर, और सर्वान्तर्यामी के सामने, मैं तुमसे इस बात की घोषणा करता हूँ कि मैं इस स्वतन्त्रता को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। मैं इस जीवन से घृणा करता हूँ। इस स्वास्थ्य से घृणा करता हूँ, उन सब बातों से घृणा करता हूँ जिन्हें तुम्हारी ये बड़ी-बड़ी पोथियाँ जीवन का परम सुख बतलाती हैं।

"पन्द्रह वर्ष तक मैंने बड़े परिश्रम के साथ इस लौकिक जीवन का अध्ययन किया है। यह सच है कि इस बीच में मैंने न तो पृथ्वी के दर्शन किए और न मैं आदमियों से मिल सका, परन्तु तुम्हारे ग्रन्थों में मैंने सुरभि मदिरा का रसास्वादन किया है। मधुर रागनियाँ गाई हैं, हिरन और जगली सुअर का शिकार किया है, स्त्रियों से प्यार किया है। कैसी स्त्रियाँ! आकाश के बादलों के समान सुन्दर, तुम्हारे लोकोत्तर कवियों की प्रतिभा से उपजी हुई! क्या तुम्हारा कभी ऐसी स्त्रियों से संसर्ग हुआ है? ये रात में मेरे पास आ-आ कर मेरे कानों के पास मुँह लगा कर मधुर और आश्चर्यलोक की कहानियाँ सुनाया करती थीं। मेरा सिर घूम जाता था। मैं मद से मतवाला हो जाता था।

"और सुनो। मैं तुम्हारी पुस्तकों मे ससार के ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ा हूँ और वहाँ से मैंने सूर्य का निकलना देखा है। वह सूर्य ऊषा को प्यार करता था और चलते समय अपने लाल-लाल ओठों की मुस्कराहट मे सध्या को आश्वासन दे जाता था। समुद्र और पहाड़ों की किनारियाँ उन ओठों की मुस्कराहट में रँग जाती थीं। फिर वहीं खड़ा खड़ा मै अपने ऊपर बिजलियों का चमकना देखता, बादलों का गरजना सुनता, मै हरे-हरे जँगल और खेत देखता, नदी, नाले, झीलें और नगर देखता। मैंने विमोहिनियों के मधुर गायन सुने हैं, बीनों का बजना सुना है, और उन चमक-दमक-वाले मायावी मुनियों के पैर को छुआ है जो मुझसे ईश्वर के विचित्र सन्देश कहने के लिए उड़ कर आते थे।

"तुम्हारी पुस्तकों के भीतर मैंने अनत गुफाओं और खोहों में प्रवेश किया है, पाताल की खोज की है, बड़े-बड़े अद्भुत कर्म किए हैं—कितने ही नगरो को जला कर धूल मे मिला दिया, कितने ही नए नए धर्मों को जन्म दिया, कितने ही द्वीपों और महाद्वीपों को विजय किया।

"तुम्हारी पुस्तकों ने मुझे बहुत सिखाया है। सैकड़ों शताब्दियों में उपार्जित किया हुआ मनुष्य का चिरन्तन विचार-गौरव मेरे इस छोटे से मस्तिष्कपिड में ठसा पड़ा है। मैं जानता हूँ कि मै तुम सब से अधिक बुद्धिमान् और ज्ञानशील हूँ।

"और मैं तुम्हारी पुस्तकों से घृणा करता हूँ। तुम्हारे ससार के अखिल सुख और ज्ञान से घृणा करता हूँ। सब निरर्थक, असार और क्षणभगुर हैं—मरीचिका की भाति भ्रमपूर्ण और खेदजनक। तुम अपने रूप और ज्ञान का घमड कर लो, परन्तु एक दिन मृत्यु तुमको इस पृथ्वी पर से इस तरह पोंछ लेगी जैसे चूहा बिल में समा जाता है। तुम्हारी भावी सन्तान, तुम्हारा भूत इतिहास, तुम्हारे प्रतिभा-सम्पन्न नररत्नों की अमरता, बर्फ की भांति जम जाएगी। एक रोज तुम्हारा पृथ्वीमडल भी नष्ट होगा—उसी के साथ सब कुछ भस्म हो जाएगा।

"तुम पागल हो। उलटे रास्ते पर चल रहे हो। असत्य को सत्य समझते हो और कुरूपता को सुरूपता। तुम्हे आश्चर्य होगा यदि अचानक तुम्हे दिखाई दे कि सेब और नारंगी के वृक्षों पर फलों के स्थान में मेंढक और कछुए लगने लगे हैं, या गुलाब के फूलों से पसीने में नहाए हुए खच्चर की दुर्गन्ध आने लगी है। जिस प्रकार तुम्हें इन बातों पर आश्चर्य होगा उसी प्रकार मुझे तुम पर आश्चर्य होता है कि तुम स्वर्ग और पृथ्वी का विनिमय करने चले हो। मुझे तुम्हारी सभ्यता समझने की इच्छा नहीं है।"

"जिन बातों को तुम सुख समझते हो, जिन बातों के लिए तुम जीते हो, उन सब से मुझे सच्ची घृणा है। इसका प्रमाण देने के लिए मैं उन दो लाख पर लात मारता हूँ जिनको किसी समय मैं स्वर्ग से अधिक समझता था और जिनको अब मैं हेय समझता हूँ। अपने को दो लाख के अधिकार से वंचित करने के लिए मैं निश्चित समय से पाँच मिनट पहले, अर्थात् आज रात को जब बारह बजने में पाँच मिनट होंगे, इस कोठरी से बाहर निकल जाऊँगा। इस प्रकार मैं अपनी उस प्रतिज्ञा को तोड़ दूँगा जिसको पूरा करने पर मै दो लाख रुपये पा सकता था।"

पढ़ चुकने पर महाजन ने कागज़ को फिर मेज़ पर रख दिया। वह उस विचित्र बन्दी के चरण को दूर से चूम कर रोने लगा और वहाँ से चला गया। जीवन में कभी अपने ऊपर उसे इतनी घृणा नहीं हुई थी जितनी इस समय हुई। अपने मकान में आकर वह पलँग पर लेट गया, परन्तु सक्षोभ और अश्रुप्रवाह के कारण उसको बहुत देर तक नींद न आई।

दिन निकलने पर चौकीदार उसके पास आया और उसने बन्दी के खिड़की से कूद कर भाग जाने का समाचार सुनाया। बन्दी बगीचे के फाटक से निकल कर न मालूम कहाँ गायब हो गया था। महाजन उसी समय अपने

नौकरों को लेकर वहाँ पहुँचा। चौकीदार का कहना सत्य था। अपवाद फैलने के भय से उसने वन्दी का लिखा हुआ वह कागज मेज से उठा लिया और उसे ले जाकर अपने लोहे के सन्दूक में सुरक्षित कर दिया।*

उसका प्यार

[१]

गाँव भर में सबसे अधिक चिन्ता इस बात की यदि किसी को थी तो हरपिरभू को। वही तो उस गाँव का पिता था न। तो क्या यह उसका कर्तव्य न था कि उसके तमाम बालक उचित ढंग से उचित स्थल पर विवाह-सूत्र में बाँध दिए जायँ—कम-से-कम विवाह-सूत्र में तो बाँध ही दिए जायँ। क्या गाँव की प्रत्येक होनहार प्रजा का यह कर्तव्य न था कि युग-युगान्तर तक वह अपनी गार्हपत्य अग्नि को प्रज्वलित रक्खे और ऐसे हृष्ट-पुष्ट तथा बलिष्ठ पुत्ररत्न उत्पन्न करे जो ईश्वर की सेवा में अपना जीवन विताएँ-- मातृभूमि की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग करें? वह उस गाँव की मिट्टी का सच्चा बेटा था—सच्चा, सीधा, भावुक और दयालु।

हरपिरभू मुंडाला गाँव का मुखिया था—एक पका फल जो हर घर में पहुँचता था, सबको सान्त्वना देता, उनके झगड़े मिटाता और उनके कर्तव्य सुझाता। नौ-जवानों का सबसे पहला कर्तव्य था कि वे विवाह करें—अपनी पसन्द का विवाह करें, इसमें कोई हरज नहीं, पर विवाह करें ज़रूर। इतने बड़े गाँव में हरेक युवक की पसन्द-लायक एक-एक लड़की अवश्य है। फिर क्यों कोई-कोई भले लड़के अभी तक विवाह नहीं करते हैं?

और क्यों नहीं विवाह कर रहा है यह रामभुवन, या रामभौन जो अपना कमाता है, अपना खाता है और बीस पचीस बरस का हट्टा कट्टा पट्ठा है। क्या इसलिए कि उसके मा बाप जीवित नहीं हैं जो उसके ऊपर ज़ोर डालें? और हरपिरभू जो सबका बाप बैठा है सो? रामभुवन उसकी बातें सुन लेता है और दार्शनिक की तरह मुस्करा देता है।

तब तो एक दिन चौधरी ने दारू का कुल्हड़ ज़मीन पर रख कर अपनी चौपाल के सामने उसे रोक ही लिया और हाथ पकड़ कर उसे बिठा लिया। हाथ की उल्टी तरफ से अपनी बड़ी-बड़ी सुफेद मूंछों पर से दारू के अवशेष को पोंछ कर उसने रामभुवन के कन्धे को थोड़ा हिलाते हुए कहा, "अरे रामभौन, घर पे कौन सी जोरू रोटी लिए बैठी होगी? ले, ज़रा सी दारू पीता जा।"

रामभुवन ने ग़लत नहीं समझा। वह जानता था कि आज-कल चौधरी हरपिरभू को उसमें क्यों इतनी अधिक दिलचस्पी है। एक दो बातों के बाद ही उसने सुना—"जब मैं तेरी उम्मिर का था, तेरी उम्मिर का, तो मैं पूरा गिरिस्तीदार बन गया था - दो छोकरे और एक छोकरी का बाप बन गया था। तैंने तो उसे देखा भी नहीं – छोरी-छोरों की मा को—कैसी भोली, कैसी नेक। मैं प्यार से उसे रानी कहा करता था।" स्मृति में कहीं कसक थी। चौधरी ने एक निश्वास लिया और अपने कुल्हड़ के पीछे मुँह छिपा लिया।

"हाँ, चौधरी काका" बाल-बच्चों से तो घर में बड़ी रौनक रहती होगी, ऊपर उठते हुए गुड़गुड़ी के धुएँ के साथ-साथ अपनी स्वप्निल आँखों को भी ऊपर उठाकर देखते हुए रामभुवन ने कहा, "बाल बच्चों से तो घर में बड़ी रौनक रहती होगी। मेरा मन बालकों की तरफ बड़ी जल्दी दौड़ता है, चौधरी काका।"

"अरे, तभी तो कहता हूँ एक बहू को घर में बुला ला," चौधरी ने विशेष ज़ोर देकर कहा, "तुम्हारा धरम भी यही है। ईश्वर ने तुम्हें खाने-पीने को बहुत दे रक्खा है। यह ठीक नहीं है कि तुम अकेले ही अकेले खाओ। जब क्वारे बुड्ढे होने लगेंगे तो क्वारियाँ भी बुड्ढी ही होने लगेंगी बूढ़ी क्वारियों से फिर कौन ब्याह करता है?"

अपनी स्वप्निल आँखों को ऊपर ही किए-किए रामभुवन धीरे धीरे बोला, "यह तो ठीक है। यह तो ठीक ही है। मैं खुद भी कई बार इस

पर विचार कर चुका हूँ... दूसरे के लिए परिश्रम करके कमाने और उसे खिलाने में बड़ा आनन्द है. ...."

चौधरी हरपिरभू का उत्साह चढ गया। उसने अपने मोटे-मोटे होठों को पोंछ कर सिमेटते हुए कहा, "हाँ, रामभौन, मैं हमेशा से समझता हूँ कि गाँव भर में तुमसे जादे समझदार कोई लड़का नहीं है। दूसरे के लिए ही कमाना अच्छा है। दूसरे के लिए कमाने में ही मज़ा है और धरम भी है। और मैं कई बार सोच चुका हूँ कि सितबिया की वह छोकरी हर नरह से तेरे लायक है—रामो। बिचारी भोली-भोली हिरनी जैसी, भगवान की भगत और बड़ी नेक है। बेकार पैसा खरच करना नहीं जानती और न उसमें कोई सौक ही है। हीरों के मोल भी सस्ती है वह। रामू और रामू! रामू और रामू! यह जोड़ी तो भगवान ने ही अपने हाथ से बनाई मालूम होती है।

स्वप्नों से भरी आँखों में कुछ आनन्द की-सी रेखा दिखाई दी। रामू के होठों पर ज़रासी मुस्कराहट आई और उसने बूढ़े काका के उत्साह में योग देते हुए कहा, "हाँ काका, रामो।—रामो लड़की तो अच्छी है। और उसके छोटे-छोटे हाथ—तुमने देखा है—कैसे मुलायम हैं।"

"हाँ हाँ, बस रामो ही तेरे लायक है, मैंने बहुत पहले से सोच रक्खा है। और उसकी माँ भला क्यों मना करने लगी। उसे तो सात गाँव में भी ऐसा वर नहीं मिलेगा .. अच्छा देखो, मैं बातचीत में गोल-मोल ढग से दोनों के मन का पता लगाऊँगा।" बूढे ने अपना खाली कुल्हड़ एक तरफ़ को रख कर विश्रम और रहस्य के ढग से युवक की आँखों में देखा। वह जनम का सगाई-जोड़ा था।

परन्तु रामभुवन ने कुछ बेचैनो से चटाई पर करवट बदली। प्रार्थना के-से स्वर में वह कहने लगा, "इतनी जल्दी नहीं, चौधरी, इतनी जल्दी नहीं। मुझे ज़रा अच्छी तरह सोच लेने दो। जब तक कोई पूरी तरह यकीन न करले कि वह किसी लड़की को प्रेम करता है तब तक उसे विवाह नहीं करना चाहिए। इसमें लड़की के साथ अन्याय है। न मालूम, बाद में क्या नतीजा निकले।"

अब चौधरी को भी थोड़ी-सी बेचैनी हुई। रामभुवन के पिछले उत्तर से जो उत्साह उसमे जगमगाने लगा था उसके लिए जब अब वायु के इस छोटे झोंके से आशङ्का पैदा हुई तो चौधरी हरिप्रभू ने मुडाला ग्राम में अपने इतने वरसों के बुढापे का अधिकार सग्रह करके उस झोंक को रोकने की चेष्टा की—"प्रेम ! प्रेम ! अन्याय ! अन्याय !—हाँ हाँ, प्रेम के बगैर विवाह नहीं करना चाहिए, इसे मैं मानता हूँ। इसमें अन्याय भी है। पर तू उसे प्रेम नहीं करता तो उसके हाथों की क्यों तारीफ करता था ?" परन्तु खुर्राट चौधरी जानता था कि युवक रामभुवन से इस तरह बातें करने से काम नहीं चलेगा। रामभुवन गाँव के उन इने-गुने दो-चार व्यक्तियों मे से था जिनके पास लोग चिट्ठी पढाने या लिखाने जाया करते थे। वह स्वतन्त्र विचार का मनुष्य था। गाँव के बड़े-बूढों का आदर करता था पर अपना भी आदर करता था। इसलिए बूढे ने अधिकार का प्रयोग कर अब तत्काल ही अनुभव का पैंतरा चला "बेटे ! बेसक, प्रेम के बगैर विवाह करना अन्योय ही नहीं बल्कि पाप है। मैं तो इसे खुद मान रहा हूँ। और, तुम्हारे ऐसे अच्छे विचार है, तुम गाँव में सबसे अच्छे लड़के हो, इसीलिए, मैं चाहता हूँ कि तुम जल्दी ही किसी अपने मनकी लड़की के साथ विवाह कर लो। अगर तुम्हें सन्देह है कि रामो को तुम प्रेम कर सकोगे या नहीं तो—और भी लड़कियाँ हैं। ठहरो—मुझे सोचने दो—हाँ हाँ, वह बिन्दो—वह बिन्दो—तुम कई वार उस घर तक पहुँचाने भी गए हो।"

रामभुवन के होठों पर तो वृद्ध की अधिकार-चेष्टा से कुछ मुस्कराहट ही दिखाई दी थी, पर अनुभवी उपचार ने उसे व्यावहारिक गम्भीरता में परिणत करके रामभुवन से कहलाया, "बिन्दो बेचारी अंधेरे में अकेली घर जाती है और रास्ता खराब है। मै उसे मिल गया तो उसकी इतनी सी सहायता कर दी। इसमें क्या है।"

एक क्षण को चौधरी के मुख पर फिर कुछ बादल से आए परन्तु चौधरी ने उन्हें दूर करके कहा, "नहीं नहीं, कोई हरज नहीं, कोई हरज नहीं . मुझे तो कई बातों में रामो ही अच्छी दीखती है। पर बिन्दो.. वह भी

अच्छी लड़की है कुछ थोड़ी सी चपल तो जरूर। पर गिरस्तिन बनते ही चपलता तो जाती रहेगी। अच्छा कभी तुमने उससे कोई इस तरह का संकेत भी किया है ?"

"नहीं काका।"

"तो फिर हमारे इस बारे में कुछ बात करके देखो न।"

वह स्वप्निल नेत्रों-वाला लड़का फिर चक्कर में पड़ा। इस बार उसकी बारी हुई कि वह अपनी गुड़ गुड़ी को उठा कर एक तरफ रख दे—गुड़गुड़ तो उसने लिया नहीं था। असमंजस के भाव से सिर नीचा करके, अपने दोनों हाथ भूमि पर टेक कर वह धीरे-धीरे बोला, "चौधरी काका, कोई जानना चाहे तो कैसे जाने कि वह किसी को प्रेम करता है या नहीं, या वह किसे प्रेम करता है ? कैसे उसे पता लगे कि अमुक स्त्री को ही उसका हृदय चाहता है, और किसी को नहीं ? कैसे इस बात का पता लगे।" रामभुवन का अनुमान था कि चौधरी अपने जीवन में दो विवाह कर चुका है इसलिए वह प्रेम के सम्बन्ध में अवश्य बता सकेगा। और उसने अपना यह अनुमान चौधरी पर प्रकट भी कर दिया।

और चौधरी भी अपने विवाहित जीवनों के इस संकेत से न मालूम कैसा- हो गया। चौधरी देखने में मध्यम आकार का, मोटा और गंजा था, जैसे बहुत से लोग होते हैं। गाँव में वह व्यवहार-कुशल मनुष्य समझा जाता था—अकेला, और दूसरों को हर समय हर कठिनाई में निर्लिप्त भाव से सलाह देने को तैयार, मानो अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रेम को उसने जाना ही नहीं था परन्तु चौधरी ने दूसरे दिन देखे थे जो उसके भीतर की एक निधि थे, जिनकी जवानी गुप्त रूप से उसके भीतर कभी-कभी एक कसक पैदा करती थी और जिनकी जवानी उसकी वाणी में कभी-कभी उद्भासित हो उठती थी। संकेत को पाकर बूढ़े को अपने पिछले युग की याद आ गई, अपनी दोनों पत्नियों के चित्र उसकी आँखों के सामने खिंच गए और अपने उस यौवन की तमाम भावुकता उसके हृदय में जैसे हरी हो उठी। इस समय जब कि आगे बढ़ती हुई संध्या के पर्दे ने उसके चेहरे को युवक की आँखों

से छिपा लिया थो, युवक ने केवल उसकी बोलती हुई आवाज़ सुनी—और उस आवाज़ में एक नवकिशोर का-सा स्वर था। परन्तु कुछ उदासी की-सी झलक भी मौजूद थी।

"कैसे पता लगे! रामभौन, वह तुम्हें अपने से भी जादे प्यारी होगी। जिस समय तुम उसका ख्याल करोगे उस समय और किसी बात का ख्याल तुम्हारे मन में नहीं आ सकेगा। वह तुम्हे तुम्हारी जान से भी जादे होगी। तुम्हें उसके लिए अपने प्राणों तक को दे देने में कोई हिचकिचाहट नहीं होगी।"

चौधरी कह कर चुप हो रहा और रामभुवन भी सुन कर चुप बैठ रहा। दोनों कुछ देर तक सिर नीचा किए हुए चुपचाप बैठे रहे। युवक के प्रश्न और वृद्ध के उत्तर ने दोनों को एक साथ ध्यानस्थ कर दिया। बूढा अपने अतीत की स्मृति मे मग्न हो गया और भूल गया कि उसके पास कोई बैठा है जिसे उसको विवाह के लिए प्रवृत्त करना है। युवक भविष्य की विभिन्न सहयोगी और विरोधी कल्पनाओं मे उलझ कर भूल गया कि अभी कोई व्यवहार-कुशल मनुष्य उसे विवाह के लिए प्रवृत्त करने को प्रेरणा के उपाय कर रहा था। उसके स्वप्निल नेत्र, दार्शनिक मन तथा भावुक हृदय ने कुछ मधुर और क्लिष्ट समस्याओं का जाल उसके सामने पूरा दिया।

फिर उसने सहसा अपना मुँह उठा कर कहा, "अच्छा तो काका, अब चलूँ।"

सध्या ने अपना विस्तार कर लिया था।

[२]

परन्तु प्रसंग की बात—

रामभुवन का मकान नदी के उस पार पुल से कुछ थोड़ी-सी दूरी पर, था जहाँ उसकी पनचक्की भी थी। यहाँ वह अपनी माता के साथ रहा करता था। चौधरी के पास से उठ कर जब वह अपने घर जा रहा था तो पुल के ऊपर चन्द्रमा झाँकने लगा था, और चन्द्रमा की उस रहस्यमय दृष्टि

के नीचे, पुल पर ही, रामभुवन की कोमल हाथ-वाली रामो आ रही थी। रामो उस समय मोदी के यहाँ से जलाने का तेल लेकर लौट रही थी। रामभुवन ने उसे पुकारा, "रामो, ओ रामो।" और उसने धीरे से कहा, "हाँ।" फिर दोनों दो-चार मिनट रास्ता-चलतों की बातें कर अपने-अपने घरों की ओर अग्रसर हुए।

और रामभुवन घर जाते-जाते सोचने लगा। सचमुच रामो कितनी भोली-भाली और मधुर है। उसके हाथ कैसे छोटे-छोटे और कोमल हैं। और जब वह अपनी हिरनी की सी आँखों को आधी उठाकर कुछ कुछ शरमाती हुई सी उसकी तरफ कभी कभी देखती थी तो एक प्रकार का आनन्द का प्रवाह-सा रामभुवन के समस्त में व्याप्त हो जाता था। कैसा-सा आनन्द था! रामभुवन ने पुन. उस आनन्द के अनुभव की कल्पना की और वास्तव में पुन: उसके भीतर एक तरह की लहर सी, एक तरह की सिहर सी, चमक गई। क्या रामभुवन इस रामो के लिए, अगर जरूरत पड़े तो, अपने प्राणों को नहीं बिछा सकता? रामभुवन ने निश्चय किया कि निःसन्देह वह रामो को प्यार करता है। अपने काल्पनिक चित्र में उसने देखा कि गाँव में लुटेरे आकर अत्याचार कर रहे हैं—जैसा कि उस समय स्थान स्थान पर हुआ करता था—और गरीब रामो किसी तरह उनके हाथों में जा पड़ी है। पता लगते ही वह, रामभुवन, अपनी कुदाली लेकर विद्युत-वेग से उन पर जा टूटता है तथा क्षत-विक्षत हो जाने पर भी घंटा भर तक उन्हें हिलगाए रहता है जिस से रामो को बच भागने का अवसर मिल जाता है। बाद में उसका स्वयं क्या होता है इसकी उसे चिन्ता नहीं। रामो की रक्षा होगई। उसे अपने प्राण देने में सङ्कोच नहीं है। बस, बस, तो रामो ही उसके एकान्त अविभक्त प्रेम का आधार है ..

और रात में जब तक वह जागता रहा, उसे बूढ़े के शब्द याद आते रहे—"जिसके लिए प्राण देने में भी तुम्हें सकोच न हो।" और वह प्रतिज्ञा कराता रहा—"मैं खुशी-खुशी रामो के लिए अपने प्राण तक दे सकता हूँ।"

जब तक कि दिन नहीं निकला .. ...

दिन निकलने के बाद जब अपनी चक्की को साफ कर-करा के वह दूसरी तरफ घूमा तो दिखाई दिया कि चुलबुली चमेली कन्धे पर नाज की टोकरी लिए खड़ी है और हँस रही है। यह चुलबुली और हठीली लड़की उसे अब भी वह बालिका ही दिखाई देती थी जिस के साथ वह बचपन से खेला था और जिसका पक्ष लेकर वह प्रायः अपने दूसरे साथियों से अच्छी तरह लड़ जाया करता था। जब चमेली अपने साथियों के किसी अन्याय पर मचल जाती और रोने लगती तो रामभुवन उसे धीरज बँधाया करता और उसके आँसू पोंछता। खेल मे देर हो जाने पर जब थक कर वह सो जाती तो वह उसे गोद में उठा कर उसके घर पहुँचा जाता था। सैकड़ों बार ही ऐसा हुआ होगा। अब वही चमेली युवती होगई है और रामभुवन युवक। रामभुवन ने खेल के दिनों की याद करते हुए सोचा कि अब यदि चमेली पर किसी प्रकार का सकट पड़े तो क्या वह चुपचाप देखता रहेगा, वह जिसके शरीर की गठन ऐसी है कि दो तीन पठ्ठों को मिल कर भी सहसा उससे भिड़ने का साहस नहीं हो सकता? नहीं, वह उसके लिए अपने प्राणों की आहुति दे सकता है। चमेली सङ्कट में! विचारमात्र से उसका चेहरा लाल हो आया और उसके शरीर में कम्पन-सा मालूम होने लगा।

[३]

उस रोज काम से निबट कर वह दोपहर भर अपने आप से बतचीत करता रहा। उसकी स्वप्निल आँखें न मालूम कहाँ-कहाँ क्या-क्या देख रही थीं और उसका भावुक हृदय क्या सोच रहा था। उसने अपने बारे में खूब जिज्ञासा की, अपने आपको समझने की बड़ी चेष्टा की, परन्तु उसकी समझ में कुछ न आया। क्योंकि रामो और विन्दो और चमेली, सब ही, उसके प्राणों की अधिकारिणी हैं। और, यदि यों ही देखा जाए तो, गाँव की कौन सी लड़की उसके प्राणों पर अधिकार नहीं रखती। किसके कष्ट को देखकर वह आँखें मूँद लेगा और टस-से-मस नहीं करेगा? अब वह बेचारी रामिया कितनी गरीब है, और रात दिन परिश्रम करती-करती मरती है। फिर भी उसकी सट बुढिया मा उसे चैन नहीं लेने देती। और वह उदास चेहरे

वाली गुलाबदेई ? उसके होठों पर कभी किसी ने आनन्द की मुस्कराहट ही नहीं देखी,—बेचारी ऐसी डरी-डरी सी रहती है, मानो दुनिया-भर में उसमें कोई मीठा बोलने वाला ही न हो। लम्बे-तडगे बलिष्ठ रामभुवन को इन सब के प्रति एक वात्सल्य की अनुकम्पा-सी अनुभूत हुई और वह हाथ पर मुँह रख कर छत की ओर देखने लगा। तो क्या मैं सब को ही प्यार करता हूँ? बूढ़े ने कहा था—"उसकी चिन्ता में और किसी की चिन्ता ही तुम्हे नहीं हो सकेगी।" फिर किस तरह दूसरों की अपेक्षा केवल एक को ही अधिक प्रेम किया जाता है ?

शाम को उसने चौधरी से पूछा।

और चौधरी ने धीरे-धीरे अपना सिर हिलाते हुए उसे बतलाया कि यह प्रेम नहीं है। यदि इसी तरह दुनिया में हुआ करता तो उसका न मालूम क्या परिणाम होता। नहीं नहीं, ईश्वर ने सृष्टि की रचना ऐसे आधारों पर नहीं की है। प्रेम एक ही को किया जाता है। एक ही को प्रेम करो। उसको छोड़ कर संसार में और किसी से तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं।

"पर तुमने तो स्वय, चौधरी काका," रामभुवन ने सदेह दिखाते हुए कहा, "तुमने तो स्वय दो स्त्रियों से विवाह किया था ?"

"पर एक दफे में एक ही के साथ तो। एक दफे में एक ही के साथ तो, रामभुवन। तू इसे नहीं समझता क्या ? यह तो बिलकुल दूसरी बात है।"

ओहो! रामभुवन अब क्या करे ? कैसे समझे ? रामभुवन निराश है। उसके हृदय में पीड़ा है। ससार-भर में क्या अकेला वही ऐसा अभागा है जो प्रेम को नहीं समझ सकेगा, प्रेम का आस्वादन नहीं कर सकेगा ? वास्तव में यह कितनी मनोहर चीज है, कितनी अद्भुत वस्तु है—यह प्रेम—जिसके बिना मनुष्य मनुष्य नहीं, जीवन जीवन नहीं—जिसके बिना आदमी इस पृथ्वी पर एक निरर्थक टुकड़खोर, या फिर एक अत्याचारी भुक्खड़ है, जो दूसरों के धन को लूट-लूट कर अपने लिए सग्रह करता है। क्या वही प्रेम युवक रामभुवन के नसीब में नहीं है ? क्या वह केवल अपने लिए ही दूसरों के धन और प्राणों का सचय करता रहेगा ?

[४]

इसी तरह रामभुवन ने महीनों तक सोचा और सोचा, और कोई समाधान न पाया ।

बरसात आगई थी और नदी लासा यद्यपि कुछ मैली सी दिखाई देने लगी थी, परन्तु उसमें यौवन का कुछ गर्व और वेग आ गया था । गति में मतवालापन था और इठलाहट थी ।

दिन में एक अच्छी बौछार हो चुकी थी और तीसरे पहर के समय मृदु सूर्यताप के साथ आकाश के बादल के टुकड़े क्रीड़ा कर रहे थे । रामभुवन को परिश्रम की सुस्ती सी मालूम हो रही थी, सो वह लासा के किनारे लकड़ी के एक बड़े भारी लट्ठे के ऊपर आ बैठा और नदी के मान और क्रोध का प्रदर्शन देखने लगा । इस लासा से वह कैसा अच्छा परिचित था, बचपन ही से । जीवन के एक भाग में अपने भोले-भाले देहाती साथियों के साथ वह इसके किनारे खेला, इसके किनारे व्यायाम और कुश्ती द्वारा उसने अपना शरीर बनाया, इसके किनारे उसने अपने व्यवसाय का काम करना सीखा । उसकी आँखें हमेशा से स्वप्निल थीं । उन पिछले ज़मानों में भी अपने स्वप्निल नेत्र और भावुक हृदय को लेकर वह असख्य बार लासा के किनारे एकान्त में बैठा है और उसका सगीत सुनता रहा है, उसकी लहरियों के नृत्य को तन्मय होकर देखता रहा है । कितनी बार उसने उससे बातें की हैं और उसकी कलकल- कलकल के विभिन्न स्वरों में अपनी बातों का उत्तर पाया है ।

और आज भी वह यहाँ अपनी एक जिज्ञासा को लिए हुए ही बैठा है और नदी के क्षण-क्षण बदलते हुए हाव-भाव में उसका उत्तर पाने की चेष्टा कर रहा है । उन जगम जल-चित्रों की गति में उसे कहीं रामो दिखाई देती है, कहीं बिन्दो, कहीं चमेली कहीं गगिया, गुलाबदेई और कहीं . कौन ?— सारा गाँव ? और लासा, वह उसकी बाल-सहचरी — उसके प्रति भी उसका अगाध प्रेम है, जैसी कि वह स्वय कहीं-कहीं अगाध है । कभी २ उसके जी

में होता है कि कैसे इस सम्पूर्ण का आलिंगन कर लूँ। और वह प्रेम कहाँ है जिसमें एक को छोड़कर दूसरी की तरफ मन ही नहीं जाता। अभी तक उसका पता नहीं लगा। क्या कभी लगेगा?

बेला ने उसको उदास-सा देख कर अपनी नाक उसके हाथ मे अड़ा दी। बेला भी आजकल कुछ-कुछ बुजुर्ग, कुछ-कुछ गौरवशालिनी-सी बन रही है। क्यों, क्या वह पाँच हृष्ट-पुष्ट सन्तानों की माता नहीं है? अभी, हाल में ही उसने एक साथ पाँच पिल्लों को जन्म दिया है—ऐसे पिल्ले जैसे कि बेला की दृष्टि में अड़ोस-पड़ोस में कहीं भी न होंगे। ये हर समय हर जगह उसकी टाँगों के नीचे दौड़ते-फिरते हैं और उसके हृदय को ऊँचा करते रहते हैं। रामभुवन से उन्हें भी सहानुभूति हुई और वे लट्ठे से लटकती हुई उसकी टाँगो पर चढ़ने का प्रयास करने लगे। रामभुवन का ध्यान नदी की ओर से हट कर उनकी ओर आकृष्ट हुआ और उसने नीचे को झुक कर अपने हाथों में एक-एक पिल्ले को उठा लिया। परन्तु इस से तो उस मण्डली मे एक क्रान्ति-सी मच गई। रामभुवन के स्नेहदान से वञ्चित रह कर शेष तीन ने बड़ा ऊधम मचाया। उन्होंने जगह-जगह उसकी टाँगों में सिर अड़ाना या चाट-चाट कर उसका स्वाद लेना आरम्भ कर दिया। तब रामभुवन ने उन दोनों को लट्ठे पर बिठा दिया और पाँचों के पाँचों उछल-कूद कर उसके शरीर पर नाचने, उसके बालों को खींचने तथा उसके चेहरे पर अपने छोटे-छोटे पँजों से प्रहार करने लग गए। इसी समय उन्हें नदी के किनारे-किनारे बहता हुआ किसी पक्षी का एक पंख दिखाई दे गया और वे अपनी सेना बना कर उस पर आक्रमण करने के लिए दौड़ गए। रामभुवन बैठा-बैठा इन निश्चिन्त खेलने वाले छोटे नटखटों की ओर देखता रहा—वे आश्रयविहीन, मूर्ख, नन्हें-नन्हे प्राणविन्दु, जिन्हें रक्षा और देख-रेख की कितनी भारी आवश्यकता थी। रामभुवन ने देखा कि उसके हृदय में उनके लिए स्थान की कमी नहीं है।

फिर उसी समय एक मादा चिड़िया अपने घोंसले से निकल कर उसके सिर पर आकर बैठ गई। रामभुवन ने सिर हिलाया कि वह उड़ गई। उसके

उठ कर धीरे-धीरे जाकर घोंसले में झाँका। घोंसले में मादा के नवजात कुलबुला रहे थे। चिड़िया ने एक बार रामभुवन की तरफ देखा और फिर अपने काम में लग गई। किसी को भी रामभुवन से डरने की क्या जरूरत थी। छोटे-छोटे मक्खी-भुनगे मच्छर उसके सिर और पैरों के इधर उधर भिनभिनाते थे। वही क्या उससे डरते थे? नहीं नहीं, रामभुवन से डरने की किसी को आवश्यकता नहीं है। उसके हृदय में सकोच नहीं है। एक बूढ़ा उधर से निकला और उससे "भैया, राम राम" कहता हुआ अपने रास्ते चला गया। हवा के मन्द झोंके ने पत्तों के कान में कुछ कहा जिस पर वे हँस पड़े। मन्द झोंका भी अपने मार्ग से चला गया और पत्ते रामभुवन के सामने ज़रा-सा नाच उठे।

"आहा, यदि मैं तमाम गाँव से, गाँव की प्रत्येक वस्तु से, विवाह कर सकता," रामभुवन ने सोचा। फिर वह बड़ी जोर से हँस पड़ा और बोला, "क्या मैं पागल हो रहा हूँ।"

[५]

बरसात जो बीती तो साहस-कर्मियों का मौसम शुरू हो गया। उन दिनों देश में एक प्रकार की अराजकता फैल रही थी। एकच्छत्र मुसलिम शासन के क्रमानुगत ह्रास के कारण जिसको जहाँ बन पड़ी वह वहीं का चार दिन के लिए नवाब बन गया! जिले का जिलेदार या नाज़िम भी एक नवाब था और कहीं चार-पाँच गाँव पर आतंक जमा कर अत्याचार करने वाला एक लुटेरा डाकू भी एक नवाब बन गया था। ये सब नवाब अपने गाँवों की प्रजा पर स्वयं अत्याचार करते थे, उनका खून चूसते थे, और मौका लगते ही आस-पास के गाँवों में भी लूट पाट कर आते थे। यह बात नहीं कि ये लोग केवल प्रजाओं अथवा हिन्दुओं पर ही अपना दाँत रखते हों। ये लोग अक्सर देखा करते कि किस प्रकार अपने समीपतर नवाब की गुप्त रूप से हत्या करा कर उसकी ज़मींदारी को हस्तगत कर लें और उसके परिवार की स्त्रियों को अपने हरम में दाखिल करें। इस प्रकार जो आज नवाब था उसके कल के

भाग्य का पता नहीं था और इसी प्रकार प्रत्येक नवाब स्वप्न देखा करता था कि वह अपने वली अहमद के लिए अकबर या औरंगजेब का साम्राज्य स्थापित कर जाएगा।

इन लोगों की सेनाएँ सौ सौ, दो-दो-सौ, चार-चार-सौ, हथियारबन्द व्यक्तियों के गिरोह होते थे जिनमें ऊपर से तो जहाद का जोश रहता था परन्तु जिनके भीतर अत्याचार की बासना, धन-लिप्सा और व्यभिचार-प्रवृति जोर मारा करती थी। ये गिरोह पड़ोस के किसी निराश्रय गाँव को ताक कर उसके चारों ओर, सेनाओं की भाँति घेरा डाल देते और जब तक वहाँ खूब मनमानी न कर लेते तब तक वहाँ से न जाते। घरों में आग लग जाती, कत्ले-आम मच जाता, स्त्रियों की दुर्गति होती, धन-दौलत नाज-बर्तन सब कुछ लुट जाते और त्राहि-त्राहि मच जाती। जब तक किसी गाँव को पूरी तरह से वीरान न कर देते तब तक जहाद-वालों को सतोष न होता।

परन्तु ईश्वर की कृपा से मुंडाला ग्राम में अभी तक दूसरी बात थी। यहाँ का पुश्तैनी जमींदार एक जाट था जो और भी अनेक गाँवों का स्वामी था। इसके पास अपने ही प्रजावर्ग में जहाद करने का कोई कारण नहीं था और अपने पड़ोसी नवाबों से सम्पत्ति और बल मे बहुत बढ़ा होते हुए भी उसने देश के एकाधिपत्य का स्वप्न नहीं देखा था। इसलिए वह दूसरों की नवाबी में प्रवेश भी नहीं करता था। परन्तु उनके आक्रमणों से अपने को सुरक्षित रखने के लिए अपनी आन्तरिक शक्ति को ही दृढ़ बनाने की चेष्टा में रहता था। फलतः, यद्यपि वह आसपास के नवाबों की दृष्टि में बहुत खटकता था, उसकी जमींदारी में आक्रमण करने का किसी अकेले नवाब को हौसला न हुआ था। इससे पहले वे लोग—'नवाब'—अन्य स्थानों के विनाश द्वारा ही अपनी स्थिति को अधिक मजबूत कर लेना उचिततर समझते थे। ऐसी परिस्थिति मे जाट की प्रजा अभी तक जहादों के परिणामों से बची हुई थी, सुखी थी और सम्पन्न थी। यह बात दूसरी है कि एकाध जगह दस-बारह आदमियों के साधारण गिरोह गुपचुप आकर कभी रातों-रात कहीं कहीं डाका डालकर भाग गए हों।

परन्तु इस बरसात के बीतते ही किसी ने जाट ज़मींदार का गुप्त बधकर डाला। बध पड़ोसी नवाब के षड्यन्त्र से ही हुआ है इसमें किसी को संदेह नहीं था। मुंडाला ग्राम उसकी ज़मींदारी की सीमा पर ही था। जमींदार के बध का समाचार मुंडाला में भी पहुँचा और ग्रामवासियों के हृदय में भय का संचार हुआ। लोग डरे कि अब जाट के राज्य में भी उन्हीं दस्युओं के दर्शन होंगे जिनके प्रभाव से अन्य स्थान तहस-नहस हो रहे थे। और सब से अधिक संकट मुंडला पर आएगा क्योंकि वह सीमा पर ही है। मुंडाला के बासी अपने राम और कृष्ण को मनाने लगे। गिरधरधारी की पुकार होने लगी।

और इसके कुछ समय बाद ही बीस-पचीस आदमियों की एक टुकड़ी दिन-दहाड़े मुंडाला में चक्कर लगा गई और थोड़ा-बहुत उत्पात भी कर गई।

फिर एक पचास आदमियों का गिरोह आया और गाँव के सीमान्त जंगल में टिक गया।

कोई अपने धन को ज़मीन में गाड़ने की चिन्ता कर रहा था, कोई अपने बाल-बच्चों को किसी दूसरे गाँव में भेज देना चाहता था, बूढ़े लोग अयोध्यावासी और कंसारी की टेर लगा रहे थे। सब का दैनिक आचरण और कारबार अव्यवस्थित होकर सहसा रुक गया था। परन्तु स्वप्निल आँखों वाला रामभुवन लासा के पास लट्ठे पर बैठा हुआ कुछ और सोचता था।

रामो और बिन्दो और चमेली इन सब में से किसी का भी प्रेम उसके भाग्य में नहीं है। किसके लिए वह अपने प्राणों को मना कर सकता है, स्त्री का प्यार उसे नहीं मिलेगा। और फिर वह लड़खड़ाता हुआ अपाहिज वृद्ध जो रोज़ उससे 'भैया' कह कर 'राम राम' कर जाता है और घड़ी भर उसके पास बैठ कर विश्रम्भ की बातें कर जाता है? क्या संकट में उसकी रक्षा रामभुवन नहीं करेगा?

संकट में! ओह! रामभुवन का तमाम शरीर थरथरा उठा। चेहरा लाल हो गया। हृदय के भीतर आकुलता, बेचैनी होने लगी। एक मसोस

की दरद सा, एक फड़क सी। संकट में ! संकट तो उपस्थित है ही। इससे बड़ा और कौन संकट होगा ? उसकी रामो और बिन्दो और चमेली की क्या-क्या दुर्दशा ये मांस के गिद्ध करना चाहेंगे। वह जो इतना भरोसा रखता है, उस अपाहिज वृद्ध की कौन खबर लेगा। उसकी बेला की पाँच सन्तानें क्या फिर भी निश्चिन्तता के साथ उछल, कूद और फुदक सकेंगी ? जलते हुए गाँव में अपने नवजातों की रक्षा के लिए मादा पक्षी किसे पुकारेगी। क्या फिर भी मन्द पवन के झोंके मुंडाला के पत्तों और टहनियों से रहस्य की बातें करने आ सकेंगे ? क्या रामभुवन के देखते-देखते प्यारी लासा का सन्तर्पण जल मुंडाला के रक्त से कलुषित होकर गाँव की भस्म को अपने प्रवाह में धोया करेगा ? रामभुवन का वक्ष विशाल हो गया। स्वप्निल आँखें जाग पड़ीं। स्वप्न यथार्थ हो गया। भावुक हृदय में आधार की रिक्तता नहीं रही। स्त्री का प्रेम उसे नहीं मिला तो न सही। अपने देश का, गाँव का, प्रेम तो उसे अवश्य मिल सकता है। अपने कौन प्रतिद्वन्द्वी है ? वह मुंडाला के लिए, केवल मुंडाला के लिए, अपने प्राणों को अर्पण कर सकेगा—और किसी वस्तु का ध्यान नहीं करेगा।

[६]

पचास आदमियों का गिरोह दो-चार रोज़ घेरा टाल कर और एक दो जगह हाथा-पाही करके ही लौट गया। मुंडाला गाँव, ज़मींदारी में सब से बड़ा था और उसमें बहुत से जवान पट्ठे थे जो सदा लाठी बाँध कर चलते थे रात में गाँव के लोग जाग कर पहरा दिया करते थे जिससे कोई आग न लगा जाए। इतना यह रामभुवन के एक रात के सङ्गठन का परिणाम था। पर सब लोग डरे हुए थे कि शीघ्र ही एक बहुत बड़े अन्य आक्रमण का सामना करना होगा जिसमें सैंकड़ों आदमियों से पाला पड़ेगा।

रामभुवन सोचता था कि अन्तिम परिणाम तो शायद प्राणसमर्पण ही होगा। परन्तु वह तो हर तरह से ही होगा। तब जल-भुन कर क्यों प्राण दिए जावें। क्यों न रामो और बिन्दो और चमेली और बेला-परिवार तथा

लासा की लाज-बचाते हुए उनका उत्सर्ग हो। जिस किसी के भी यहाँ भाला, किरच, तलवार, कुल्हाड़ी, खुरपी—जो कुछ भी था, वह सब निकाला जाकर ताज़ा किया जाने लगा। रामभुवन को एक क्षण का अवकाश न था। सोने बैठने की कौन कहे।

परन्तु ऐसा मालूम हुआ कि देश का प्रेम भी शायद उसके भाल में नहीं लिखा है। उसकी माता यकायक एक रोज बिना कहे सुने बीमार पड़ गई और रामभुवन के लिए अजीब धर्म-संकट उपस्थित हो गया। जो रामभुवन रामो, बिन्दो, नन्दो, या चन्दो के लिए अपने प्राण दे सकता है वह क्या अपनी माता से अपने प्राणों को किनारे रख सकता है, उसको मरने के लिए छोड़ दे सकता है? परन्तु संकट यह था कि वह उसकी चिकित्सा, शुश्रूषा में लग कर भी उसे बचा सकता है, इसे कौन जाने? कौन जाने आततायियों का दूसरा भयंकर गिरोह कब आ धमके? और उस समय तो रोग से ही नहीं, इन पिशाचों से भी, चारपाई पर पड़ी हुई उस बुढ़िया की रक्षा करनी होगी। यही दुष्कर था। क्या खबर, उसे जलते हुए मकान के भीतर ही झुलसना पड़ जाए। चलते-फिरते आदमी की रक्षा तो हो सकती है।

उसी जमींदारी के एक दूसरे गाँव में उसके मामा का घर था। रामभुवन ने सोचा कि इस समय माता की रक्षा का श्रेष्ठ उपाय यही है कि उसे वहाँ पहुँचा आए। उसके पास दो तेज़, तन्दुरुस्त बैल थे और एक गाड़ी थी। आज अपनी माँ को ले जाकर कल तक वह लौट सकेगा। यह एक रोज जो उसकी देश सेवा के पावने में से निकल रहा है उसका रामभुवन को खेद अवश्य है। मगर एक रोज ही तो और कर्तव्य की मजबूरी है।

[७]

जब वह लौट रहा था तो मुंडाला से पाँच सात मील दूर, एक दूसरे गाँव की सीमा पर, झाऊ के जँगल से किसी के कराहने की आवाज़ आती हुई उसे सुनाई दी। रामभुवन ने अपनी गाड़ी रोक ली। कुछ क्षण ठहर

कर फिर वैसी ही एक कराहट हुई। रामभुवन बैलों की रस्सी एक पेड़ मे बाँध कर शब्द की दिशा मे लपका। कराहट बार-बार सुनाई दे रही थी जिससे दिशा और स्थल का अनुमान करके उसके पास पहुँचने में, उसे देर न लगी। यहाँ बड़े-बड़े पेड़ों के पीछे लम्बी-लम्बी घास में पाँच व्यक्ति औंधे पड़े हुए थे। रामभुवन देख कर सन्न रह गया। परन्तु समझना कठिन न था। उनमे दो हिन्दू तथा तीन मुसलमान थे।

यद्यपि रामभुवन स्वय अपने गाँव मे सगठन करके लोगो को मरने और मारने के लिए तैयार कर रहा था, तथापि इस प्रकार के सघर्षों या उनके परिणामों का प्रत्यक्ष उसने अपने जीवन में कभी नहीं किया था। युद्धों तथा मारपीट के प्रसगों का उसका ज्ञान केवल सुना हुआ ही था। अब इन पाँचे व्यक्तियों को क्षत-विक्षत, खून से लथपथ, सहायक-विहीन दशा में, जिसमें एक कुत्ता भी आकर उनको ठोकर मार जा सकता था, देखकर वह भावुक युवक यदि स्तम्भित रह गया तो क्या आश्चर्य है? उसके हृदय में करुणा का आविर्भाव हुआ।

उसने परीक्षा करके देखा। दो हिन्दू तथा तीन मुसल्मान। मुसलमान! इस शब्द से ससर्ग रखने वाले तमाम भावों का उदय होते ही उसकी करुणा का लोप सा होता दिखाई दिया। क्या इन लोगों ने ही गरीब निरीह प्रजाओं का जीवन हराम नहीं कर रक्खा है? क्या इस स्थान पर इन तीन व्यक्तियों ने ही शेष दो निरापराध व्यक्तियों की जानें नहीं ली हैं? करुणा के स्थान में क्रोध और कठोरता का आविर्भाव होना ही चाहता था।

इतने में ही वह अति दर्दभरी कराहट फिर जाग गई। रामभुवन जैसे नींद मे अपनी भाव-परम्परा से नीचे फिसल कर जाग पड़ा हो। उस कराहट का दर्द उसके दिल तक पहुँच गया। उन पाँच व्यक्तियों में से, उन तीन मुसल्मानों मे से, अभी एक जीवित था। रामभुवन ने उसकी ओर घूम कर देखा तो उसने बड़े कष्टसे कुछ इशारा किया। रामभुवन ने उसका इशारा कुछ-कुछ समझा। उसने बड़ी सावधानी से घायल व्यक्ति को उठाया और उसे

धीरे-धीरे अपनी गाड़ी पर ले जाकर लिटा दिया। फिर वह थोड़ी दूर इधर-उधर पानी की तलाश में गया। परन्तु पानी कहीं नहीं मिला।

रामभुवन गाड़ी को तेजी से आगे ले चला। सौभाग्य से जंगल बहुत लम्बा-चौड़ा नहीं था और उसके छोर पर ही, कोई आधा मील जाने के बाद, उसे एक झोंपड़ी दिखाई दी। रामभुवन ने देखा कि यह झोपड़ी हिन्दुओं की है। उसने झट घायल व्यक्ति की तुरकी टोपी उतार कर अपने कपड़ों में छिपा ली और उसे उतार कर झोंपड़ी के पास लिटा दिया। जल्दी से पानी मँगवा कर पिलाया जिससे घायल की आँखे कुछ खुल सी गई और उसने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से रामभुवन की ओर देखा। रामभुवन ने इशारा करते हुए उससे धीरे से कहा, "चुप, कुछ बोलना नहीं। अपने को हिन्दू बताना। तुम्हारा नाम सूरजसिंह है।"

जब सूरजसिंह को आराम के साथ झोपड़ी के भीतर सुला दिया गया और उसके घावों को बाँध बूँध दिया गया तो रामभुवन कुछ निश्चिन्त-सा हुआ। निश्चित होकर वह जैसे अब अपने संसार में आगया। अपने संसार में आते ही उसे एकदम चक्कर आने लगा। वह जैसे एक बड़े विचित्र स्वप्न से उठा हो, जो अभीतक भी उसका पीछा नहीं छोड़ रहा है और जिसके परिणाम में एक पाप की सी विभीषिका है। उसने यह क्या किया! एक मुसलमान को, देश के एक शत्रु को, जीवन-दान दिया है। देश के शत्रु की सहायता करना स्वयं देशकी शत्रुता करना है। न मालूम, इसने कितनों पर अब तक अत्याचार किया है और अच्छा हो कर कितनों पर करेगा। रामभुवन माथे पर हाथ रख कर सोचने लगा। बहुत देर तक सोचता रहा। उसकी विचारधारा में अपने देश, ग्राम के प्रति विश्वासघात करने के अपराध की भावना बड़ी तीव्र हो चली। क्या इस अपराध का कोई प्राश्चित्त हो सकेगा?

रात में वह सूरजसिंह के पास ही सोया। उसे नींद कम थी। उसके मन में पाप और विश्वासघात और प्रायश्चित के ही विचार चक्कर मार रहे

थे। परन्तु विचार-सागर में भी लहरें आया करती हैं। एक लहर आकर दूसरी लहर को दबा देती है। रामभुवन के विचारों ने पलटा खाया।—

"पर क्या सचमुच मैंने कोई पाप या अपराध किया है? एक मरते हुए मुसलमान की रक्षा की है, इसलिए उसने मुसलमान घर में जन्म लिया, यह तो प्रकृति का संयोग है। मुसलमान ही क्या, अत्याचार करने वाला तो कोई भी हो सकता है। वह जब अत्याचार करने आएगा तो हम देख लेंगे और अपनी रक्षा करेंगे। परन्तु इस दशा में कौन किसका वैरी है और कौन किसका मित्र? और कौन ही मुसलमान है और कोन ही हिन्दू। वह अब केवल एक मनुष्य है, और कुछ नहीं। जहाँ वे अन्य चोरों चले गए हैं वहाँ जातिभेद नहीं है। तो एक मनुष्य की सहायता करना क्या दूसरे आदमी का धर्म नहीं है? जब मनुष्य होकर मैं मनुष्य से ही सहानुभूति नहीं रख सकता, मनुष्य होकर मनुष्य से ही विरोध करूँगा, तो देशवासी होकर देसवासियों से कैसे सहानुभूति कर सकूँगा। क्या एक समय ऐसा नहीं आ सकता जब उससे भी विरोध करने लगू ?

"नहीं नहीं, जैसे भाव अभी-अभी मेरे हो रहे थे वे तो प्रतिहिंसा के भाव हैं। वे मनुष्य के नहीं, राक्षस के भाव हैं। उन में न मनुष्यता है, न देशप्रेम है। यह मनुष्य यदि बच गया तो शायद मेरा मित्र ही बनेगा। पर नहीं, मैं अपने निज की बात नहीं सोच रहा हूँ। मेरा यह मित्र बने या शत्रु, इससे क्या। इस समय मेरे लिए यह एक मनुष्य-भर है। एक पीड़ित मनुष्य की भरसक सहायता न करने से मैं अपने को मनुष्य नहीं कह सकूँगा।

"और मुंडाला? वहाँ के काम में देर में देर-हो रही है। पर मैं क्या करूँ? ईश्वर की इच्छा में मैं कौन हूँ बाधा डालने वाला। शायद स्त्री-प्रेम की भाँति देशप्रेम भी मेरे भाग्य में नहीं है। नहीं तो ऐसे ही अवसर पर क्यों मेरी माता बीमार पड़ती और क्यों यह मनुष्य अर्द्धमृत अवस्था में मुझे मिलता? तो मैं मनुष्य-प्रेमी ही बनूँगा। यहाँ इसकी सेवा-शुश्रूषा में शायद दो चार दिन लग जाए। मुंडाला के लोग शायद मुझे कायर समझेंगे।

समझ में तो उनके ऊपर निकट भविष्य में ही संकट आने की सम्भावना है .मैं उनके लिए अपने प्राण दे सकता हूँ । पर वे कुछ-कुछ तैयार हो चुके हैं । -इस समय मेरी यहीं अधिक ज़रूरत है, यहीं अधिक ज़रूरत है । इसे छोड़ जाना भी कायरता होगी । कायर मनुष्य क्या कभी भी दूसरों के लिए अपने प्राण दे सकता है ? इसकी थोड़ी-सी भी बे-फिक्री की हालत होते ही मैं मुंडाला चला जाऊँगा । ..”

रामभुवन को इसी तरह सोचते-सोचते धीरे-धीरे नींद आ गई और वह बड़ी अच्छी तरह सोया । दिन निकलने पर उसने अपने रोगी का हाल पूछा। वह रात में बीच-बीच में कराहता रहा था, परन्तु बाद में यह भी कुछ सो गया था । जागने पर उसके चेहरे पर रामभुवन को सजीवता के कुछ विशेष चिन्ह दिखाई दिए । उसकी पीड़ा भी कुछ-कुछ कम थी । रामभुवन को अपार हर्ष हुआ ।

लेकिन रामभुवन को वहाँ एक सप्ताह ठहरना पड़ गया । इस बीच में उसने अपने को भूल कर रोगी की सेवा की । उसके परिश्रम से एक सप्ताह में रोगी की अवस्था ऐसी हो गई कि रामभुवन अपने को उसकी ओर से निश्चिन्त कह सकता था । जिन लोगों ने इन दोनों को आश्रय दिया था वे भी अब इस बात के लिए तैयार थे कि रोगी सूरजसिंह का शेष भार अपने ऊपर लेकर रामभुवन को उसके गाँव चला जाने दें । दोपहर-पीछे रामभुवन ने मुंडाला के लिए अपने रोगी और आश्रयदाताओं से विदा ली ।

[८]

गाँव की तरफ चलने को तो वह चला, परन्तु उसके हृदय पर जैसे कुछ बोझ सा हो—सो भी ऐसा वैसा क्यों, उसके जीवन तन्तुओं में खींचो-तानी करने वाला बना हुआ था । जो जिन्दगी-भर की एक साध, आदर्शों से ठोक-ठोक कर पोसी हुई एकमात्र भावुकता जिसके बिना उसके स्वप्नमय यथार्थ में जीवन की यथार्थता ही नहीं थी, उसके पैरों को आगे बढ़ने से रोकती थी और आगे ढकेलती थी । उसने मनुष्यता की सेवा करके एक व्यक्ति की जान

बचाई, उसे इस बात के लिए कोई खेद न था—एक सप्ताह उसने इसी के नशे में काट दिया था। परन्तु वह अतीत की बात हो गई। वर्तमान अतीत को अभिभूत करके अब उसका आव्हान कर रहा था। वह ललकार रहा था कि एक व्यक्ति की, मनुष्य ही की, रक्षा करके अब सैकड़ों मनुष्यों की अन्त्येष्टि करने आ रहे हो क्या ? और क्या—यही तो सब कहेंगे। न मालूम अब तक मु डाला में क्या होगया होगा। और—कुछ भी न हुआ हो तो भी वह क्या मुँह लेकर जाएगा। लोगों से क्या वह यह कहने का साहस करेगा कि उससे देश के एक शत्रु की रक्षा की है ? साहस तो कर भी सकता है वह—उसे अपने कर्म के लिए कोई खेद नहीं, बल्कि हर्ष ही है, पर उस कर्म को जान कर मु डाला के जन अब उस पर विश्वास कर सकेंगे क्या ? क्या अब उसे मु डाला की जनता की, उस बहुगत मनुष्यता की, सेवा करने का अवसर दिया जा सकेगा ? सचमुच अब वह वहाँ क्या मुँह लेकर जाए। परन्तु वह जा रहा है और जा रहा है .

गाँव के सिर पर पहुँचते-पहुँचते, पेड़ों के झुरमुट में से रामभुवन को अपने गाँव के मकानों और झोपड़ियों की कोई-कोई चोटियाँ दिखाई देने लगीं। रामभुवन के हृदय में धड़कन शुरू हो गई। अब ज़रा देर में वह गाँव में पहुँच ही जायगा। क्या समाचार सुनने को उसे मिलेंगे ? क्या तिरस्कार उसका सत्कार बनेगा। अपने तिरस्कार की चिन्ता क्यों है ? मनुष्यता के लिए जीवन से खेल करने-वाला व्यक्ति क्या आदर और तिरस्कार के भावों से विचलित होगा ? नहीं होगा। साहस करके चला ही चलेगा रामभुवन।

गाँव की सीमा में भी प्रवेश कर लिया अब तो उसने, सीना फुलाकर और तिरस्कार के बदले में नम्र भाव से अपने पूरे प्राण दे डालने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वृक्षों की पंक्तियाँ कुछ-कुछ घनी थीं और उनके हरे-हरे पत्ते एक दूसरे से कुछ इशारा कर रहे थे। पक्षी भी कोई-कोई इधर-उधर उड़ लेते थे। वहीं कहीं रामभुवन को बेला भी दिखाई दे गई, जैसे बड़ी बहकी सी हो। उसके पाँचों शिशु भी उसके साथ बहक रहे थे और वे

रामभुवन को कुछ कृश से मालूम हुए। रामभुवन गाड़ी रोक कर उतर पड़ा। छहों पशु उससे आकर लिपटने लगे और उसने क्षण भर उनसे प्यार किया। फिर उन्हे भी अपने साथ गाड़ी मे बिठा लिया और आगे बढ़ा। उसे लासा के तट पर अपने बैठने के स्थान का भी स्मरण हुआ जहाँ वह प्राय: अपनी भावुक दार्शनिक चिन्ताएँ किया करता और बेला, तथा बाद में उसके परिवार, के साथ खेला करता। उसने कल्पना में सोचा कि उस तरंगिणी, उन्मादिनी की भी, शायद अब वह शोभा नहीं रही होगी, क्योंकि बेला तक उसको छोड़ आई है। और रामो, बिन्दो आदि! हाँ हाँ, वह भी..और उसका अपना मकान! नहीं इस एक सप्ताह अपने मकान का तो उसे ध्यान तक नही हुआ।

कुछ और आगे बढ़ कर, मुख्य बस्ती से अभी ज़रा दूर ही उसे वही अपाहिज वृद्ध मिला जो उससे "भैया राम राम" किया करता था। वह एक पेड़ के नीचे, जड़ के ऊपर, अपने हाथ पर सिर को नीचा किए बैठा था। रामभुवन ने उसका संबोधन किया। घबड़ाए हुए भाव से उसने ऊपर को देखा और फिर सर झुका लिया। रामभुवन आतुर हो गया और उतर कर उसके पास आ गया।

रामभुवन ने अपनी ही ओर से बात चलाने का आग्रह दिखाया। वृद्ध ने किसी प्रकार मुँह खोलने की प्रवृत्ति बना कर कहा,' 'गाँव का हाल पूछने से तुम्हें क्या मिलेगा? तुम तो गाँव को छोड़ ही गए। गाँव की फिकर होती तो एक अठवाड़े तक नहीं बैठे रहते ऐसे।"

गाँव में रामभुवन के सब काका और दादा ही थे। उसने कहा, "ऐसे क्यों कहते हो, दादा? तुम्हें नहीं मालूम है कि ." कहते-कहते वह रुक गया। बहाना करना उसने सीखा ही नहीं था और बात कहने में उसे कमजोरी मालूम होती थी। एक क्षण वह चुप रहा और बोला, "मैं जानता था कि मुझ से गाँव नाराज़ होगा और मेरा विश्वास नहीं करेगा। पर मैं सचमुच मजबूर था और बराबर गाँव की चिन्ता से चिन्तित था, दादा।"

"गाँव की चिन्ता थी तो जरा-सा और सबर करलो। कल को सब हाल अपने आप देख लेना।"

रामभुवन समाचार के पूर्वाभास से घबड़ा उठा और कुछ खीज तथा उतावलेपन से बोला,"तो बतलाते क्यों नहीं हो ? तुम्हीं बतला दोगे तो क्या हो जाएगा। शायद कल से पहले कुछ उपाय हो सके।"

"उपाय हो सकेगा। रामभौन, उपाय सिखाने--सिखाने में तुमने गाँव के जवानों को उभारा। उसी का तो यह सब फल है। अब और क्या उपाय करना चाहते हो ?"

"अरे तो कुछ भी नहीं बताओगे क्या ? मेरे सिखाने का फल है! तुमने तो मुझ से कभी ऐसी बातें कीं नहीं। अच्छा तो, यह तो बतलाओ, तुम यहाँ गाँव के दूसरे सिरे पर जगल में क्यों बैठे हो ?"

"जान तो सभी को प्यारी होती है। गाँव से बस अपनी एक गठरी लेकर भाग रहा हूँ। अपाहज हूँ इसमे चला नहीं जाता।"

रामभुवन के लिए अपने हृदय की धड़कन को दबाना कठिन होगया। एक बार सोचा कि इस बुड्ढे को छोड़कर गाँव में चला जाऊँ, फिर सब हाल मालूम हो ही जाएगा। पर उसके मन में इतनी घबराहट थी कि गाँव में जाने तक की देर को वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था। और फिर गाँव वालों ने भी यदि बुड्ढे की तरह ही जवाब दिया तो ? एक क्षण को उत्तेजना में वह कहने को भी हुआ—"तो दादा, मैं तुम्हें भागने नहीं दूँगा और अपने साथ पकड़ कर गाँव में ले चलूँगा।" पर वह उत्तेजित बहुत कम होता था। और फिर इस समय . . .

जैसे-तैसे वृद्ध ने अपने व्यवहार की रुखाई दूर की।.. जिस किसी ने भी ऐसा किया था उसे वैसा नहीं करना चाहिए था। वह कोई रामभुवन का सिखाया हुआ छोकरा ही होगा। दो रोज से गाँव के उत्तर की ओर छावनी पड़ी हुई है। कल से उनकी कार्रवाइयाँ शुरू हुई हैं। अब की ये लोग न किसी को मारते हैं, न पीटते हैं, न शोर मचाते हैं। चुपचाप रात में मौक़ा

देख कर एक-एक तरफ से घरों में घुस आते हैं और घर के आदमियों का मुँह बन्द कर उनके हाथ-पाँव बाँध कर पकड़ ले जाते हैं और घर का माल असबाब लूट लेते हैं। पिछली रात में उन्होंने ऐसा ही किया और आज सुबह उनके दल का एक आदमी गाँव के बाहर मरा हुआ पड़ा पाया गया। आज दोपहर में सौ आदमियों का एक दल गाँव में घूम कर डौंडी पीट गया कि जिस किसी ने उनके आदमी की हत्या की है वह जाकर शाम तक अपने को उनके हाथों में सौंप दे, नहीं तो रात में वे सारे गाँव मे आग लगा देंगे। बुड्ढे ने कहा, रामभौन, यह सब तुम्हारी ही करतूत है। तुमने ही गाँव के छोकरों को भड़काया था। उन्ही मे से किसी ने यह किया है। अब कल तो गाँव की राख अपनी आखों से देख लेना। हो राम! हो राम!!"

रामभुवन का सिर घूम गया और उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसने वृद्ध की अन्तिम उक्ति नहीं सुनी। वह यह भी नहीं सोच पा रहा था कि सचमुच क्या यह सब उसी का अपराध है अथवा यह कोई दैवी घटना है।

कुछ देर बाद अपने होश में आकर उसने वृद्ध से कहा, "दादा, तुम से चला नहीं जाता, इससे तुम मेरी गाड़ी लेकर जहाँ जाना चाहते हो चले जाओ। भगवान तुम्हारी रक्षा करेंगे। मैं गाँव में जाता हूँ।"

वृद्ध को अपने सामने-ही गाड़ी पर रवाना करा कर रामभुवन उसी जड़ पर आकर बैठ गया जहाँ अभी तक वह वृद्ध बैठा था। वहाँ बैठा-बैठा वह दूर से गृह-राजियों को देखने लगा। वह अब क्या करे? जाकर फिर तत्काल युवकों को सगठित करे और युद्ध के लिए तैयार हो जावे? क्या सुनेंगे? और वृद्धों तथा स्त्रियों से क्या कहेगा वह? अगर युवकों ने उसकी सुनी भी तो क्या दो चार घंटे में काफी सगठन हो सकेगा? और यदि, जैसा कि आक्रामकों ने घोषित किया है उन्होंने गाँव मे आग लगाने से ही अपना कार्य आरम्भ किया तो क्या उसका सगठन उस आग से भी लड़ सकेगा? रामभुवन जानता है कि गाँव के वर्तमान सकट में उसका कोई अपराध नहीं है! वह उसके लिए जरा भी उत्तरदायी नहीं। अब तक उसने कोई ऐसा

काम नहीं किया जिसके लिए उसका अन्तःकरण उसकी चुटकियाँ ले सके। पर नहीं, इस तमाम पर विचार करना उसका लक्ष्य नहीं। उसके सामने संसार का एक मात्र तथ्य, मुंडाला की रक्षा का महत् प्रश्न है मुंडाला की रक्षा कैसे हो?

"तुम उसको इतना प्यार करो कि उसके लिए अपने प्राण तक दे सको।" रामभुवन सोचता है—प्राण दे देने का भी तो अवसर कहाँ है। गाँव के लिए लड़ते-लड़ते मर जाने में वह कितना सुखी होगा। पर उससे गाँव की रक्षा भी तो हो सके। अगर गाँव में आग ही लगा दी जाती है तो क्या वह मर कर भी कुछ कर सकेगा? और फिर उसकी रामो, बिन्दो, चन्दो, नन्दो ऊँह, मुंडोला की शत-शत मानवता का संहार कौन रोकेगा? उस दृश्य को न देखने के लिए पहले से मर जाना भी तो कायरता है।

तब ......रामभुवन देर तक सोचता है और सूर्यदेव उसका साथ छोडने की धमकी देने लगे हैं। रामभुवन अपनी उधेड़बुन में ही धीरे-धीरे उठा और गाँव की ओर भटकने लगा। उसका प्रयत्न था कि गाँव वाले उसे न देख सके। जहाँ किसी के द्वारा देखने की आशंका होती वह चुप चाप नीचे को मुँह करके बिना देखे-सुने या बोले ही आगे बढ जाने की चेष्टा करता।

* + * +

मुंडाला में आग नहीं लगी। लोग रात भर बेचैनी से जाग कर दिन निकलने पर जब भगवान् को धन्यवाद देते हुए कुछ इधर-उधर डोले और उन्होंने सूर्यनारायण का दर्शन करने के लिए मुँह उठाया तो वे भौंचक रह गए। सीमा के पास लगे हुए एक सूखे वृक्ष पर एक नरदेह लटक रहा था। उसे फाँसी दी गई थी। सबने उस देह को पहचाना और दाँतों में उँगली दबा कर एक दूसरे की ओर देखा।

एक वृद्ध ने मुँह का ताला खोलते हुए कहा, "तो यह इसी का काम था। देखने और कहने में ऐसा और करनी में ऐसा।"

एक युवक ने प्रतिवाद किया, "तुम समझते ही नहीं तो बोलते क्यों हो ? करनी मे कैसा ? उसने वैसा किया तो उसने ही ऐसा भी किया। नहीं तो तुम इस समय यह कहने को बैठे न रहते।"

फिर एक बृद्ध बोला, "झूठ है। जो वैसा करता है। वह ऐसा कर ही नहीं सकता। कहीं धोखे से हाथों में पड़ गया होगा।"

लुटेरों का दल कुछ रोज लूट-पाट करके लौट गया। शायद उनके सरदार पर भी इस घटना का कुछ प्रभाव पड़ा हो। उसने आग लगाने की आज्ञा नहीं दी। उनके कार्यों की कल्पना से भयभीत होकर बहुत से लोग गाँव छोड़ भाग गए थे। उनके वापिस लौट जाने के कुछ समय बाद गाँववाले भी अपने-अपने घरों में आकर बस गए।

और फिर वर्षों तक गाँव के बचे हुए लोग आपस में टिप्पणियाँ करते रहे। चार बुराई करने वाले थे तो एक-दो प्रशंसा भी करते थे। पर चौधरी हरपिरभू कोई राय न देता था। वह, जो हमेशा गाँव का बाप रहा और प्रत्येक विषय पर हरेक को हर समय सलाह-उपदेश देने को तत्पर रहता, अब सहसा इतना बुड्ढा हो गया था कि उसका उर्वर मस्तिष्क सोचने समझने मे असमर्थ था।

और तब बीस-पचीस वर्ष बाद, जब सुडाला मे खूब अमनचैन था, और लोग हरे-भरे थे, एक परलोक-यात्रा को तत्पर व्यक्ति के आत्म-प्रकाशन ने सब भेद खोल दिया। अपने पाप का कम से कम इस रूप में प्रायश्चित किए बिना उसकी आत्मा सुख-शान्ति से नहीं जा सकती थी।

तब गाँववालों ने फिर दाँतों-तले उँगली दबाई और सूखे पेड़ के स्थान पर एक स्मारक बनवाया। उस स्मारक के ऊपर मोटे-मोटे अक्षरों में बहुत समय तक लोग पढ़ते रहे—उसने गाँव की रक्षा के लिए दूसरे के अपराध का दंड अपने ऊपर लिया। उससे बढ़ कर प्रेम किसका हो सकता है। *

---

* एक अँग्रेजी प्लॉट के आधार पर लिखित स्वतन्त्र कहानी।

नव जीवन

[१]

ईसा के सन् १७९९ वे वर्ष में मेरा एक सम्बन्धी लँगड़ाता हुआ चैथम नगर में आया। वह बेचारा इस समय एक-एक कौड़ी को मोहताज, एक दरिद्र यात्री था। वह इसी कमरे में आकर आग के सामने बैठ गया और थोड़ी देर बाद यहीं एक टूटी चारपाई पर सो रहा।

उसका इस चैथम नगर में आने का एक मुख्य अभिप्राय था। वह किसी अश्वारोही सेना में, अथवा यदि यह सम्भव न हो तो किसी दरोगा या दफा-दार से महाराज जार्ज की मोहर का एक शिलिंग लेकर * किसी पैदल सेना में ही, भरती हो जाना चाहता था। उसकी मरने की इच्छा थी। और, उसने सोचा कि पैदल चलने का कष्ट उठा कर गोली खाने की अपेक्षा घोड़े पर चढ़कर मरना ही अधिक अच्छा है।

उसके जन्मकाल का नाम रिचर्ड था, परन्तु वह डिक के ही नाम से अधिक प्रसिद्ध था। चैथम आते समय उसने अपने इस पुराने उपनाम को मार्ग में बदल कर उसके स्थान में डबलडिक रख लिया। आजकल वह रिचर्ड डबलडिक के ही नाम से सुपरिचित था। उसकी आयु बाईस वर्ष की थी और वह पाँच फुट दस इंच का एक लम्बा-तड़ंगा युवक था। उसका जन्म एक्समाउथ में हुआ था, परन्तु अपने जीवन भर वह कभी उस स्थान के निकट भी नहीं गया। दुर्भाग्य से जिस समय एक फटा-सा जूता पहने अपने धूलिधूसरित पैरों को घसीटता हुआ वह चैथम में आया,

---

*इस समय युद्ध की प्रबलता तथा सैनिकों की अधिक आवश्यकता के के कारण एक शिलिंग का लाभ दिखा कर लोग पैदल सेना में भरती किए जाते थे। एक शिलिंग भरती होने का इनाम था।

उस समय यहाँ एक भी अश्वारोही सेना न थी। निदान, वह पैदल सेना में ही भरती हो गया और शराब पी-पी कर मस्त रहने लगा। अपनी नौकरी के काम को वह बिलकुल भूल-सा गया।

इस प्रकार मेरा सम्बन्धी बुरे पथ में प्रवृत्त हो कर बड़ा अस्थिर और अनियन्त्रित पशु-जीवन व्यतीत करने लगा। बात यह नहीं थी कि उसका हृदय अच्छे विचारों से शून्य था। उसकी सहज वृत्तियों का झुकाव, उचित मार्ग ही की तरफ था परन्तु उन पर एक प्रकार की छाप-सी लग गई थी। एक सुदर्शना युवती से उसका विवाह निश्चित हुआ था। उसको यह इतना प्रेम करता था कि न तो उसे और न स्वयं इसे ही इस प्रेम का विश्वास होता था। परन्तु किसी बुरी घड़ी में कोई ऐसी घटना हो गई थी जिसके कारण युवती ने गम्भीर वाणी में उससे कह दिया था "रिचर्ड, मैं कभी किसी दूसरे मनुष्य से विवाह न करूँगी। तुम्हारे लिए मैं सदा कुमारी रहूँगी। परन्तु मेरी मार्गल के मुख से तुम इस पृथ्वी पर अब कोई बात न सुन सकोगे। जाओ रिचर्ड, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।"

युवती का नाम मैरी मार्गल था। उसकी बात ने युवक की आशाओं का अन्त कर दिया। डबलडिक जीवन से ऊब कर गोली खाने की इच्छा से चैथम में आया।

सन १७९९ मे रिचर्ड डबलडिक से अधिक भ्रष्टशील और प्रमत्त मनुष्य चैथम के बारकों भर में कोई नहीं था। तमाम पलटनों के सब से निकृष्ट मनुष्यों के साथ उसका संसर्ग रहता था। कदाचित् ही वह कभी गंभीर और अप्रमत्त दिखाई देता। सदैव उसे अपनी असावधानता के लिए दंड मिलता था। तमाम बारकवाले यह समझ गये थे कि बहुत शीघ्र ही रिचर्ड डबलडिक को कोड़े खाने पड़ेंगे।

रिचर्ड डबलडिक के दल के कप्तान एक युवा सज्जन थे जो आयु में लगभग उससे पाँच वर्ष बड़े थे। उनके हँसते हुए नेत्र चमकीले, सुन्दर और काले थे। कप्तान के गम्भीर होने पर उनमें कठोरता नहीं होती थी, प्रत्युत एक प्रकार का धीर और स्थिर भाव उनमें आ जाता था। इन नेत्रों की दृष्टि

में डबलडिक के लिए विचित्र प्रभाव था। उसके संकुचित हुए संसार में यही दो ऐसे नेत्र थे जिनका सामना करने की उसमें शक्ति नहीं थी।

अपनी अकीर्ति और दंड पर डबलडिक लज्जित नहीं होता था। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक मनुष्य उसके औद्धत्य और अवज्ञा का विषय था। परन्तु उसे यह मालूम होने भर की देर थी कि क्षण भर के लिए कप्तान की दृष्टि मुझ पर पड़ी, और वह लज्जा से दब जाता था। कप्तान के देखने की सम्भावना मात्र से वह विगर्हित और विचलित हो उठता। बुरी बुरी आपत्ति के समय भी वह उन दो चमकीले, सुन्दर तथा काले नेत्रों को देख कर रास्ता कतरा जाता तथा कहीं और निकल जाता।

एक दिन जब वह पिछले अड़तालीस घंटे की कैद के उपरान्त काल-कोठरी से निकला, जिसमें पहले भी वह अपना बहुत-सा समय ऐकान्तवास में व्यतीत कर चुका था, उसे कप्तान टाटन के निवेश में उपस्थित होने की आज्ञा मिली। कालकोठरी से निकले हुए मनुष्य की मलिन और गिरी दशा में कप्तान के सामने पड़ने की उसकी इच्छा नहीं होती थी, परन्तु अभी वह इतना उद्धत नहीं हो गया था कि आज्ञा का उल्लंघन कर सके। अतएव अपने हाथ में फूँस का एक तिनका मरोड़ता-मसलता डबलडिक उसी दशा में कप्तान के निवास में पहुँचा।

जैसे ही द्वार पर पहुँच कर उसने अपनी मुट्ठी से भप् भप् किया वैसे ही कप्तान ने उसे भीतर बुला लिया। रिचर्ड डबलडिक अपनी टोपी उतार कर पैर बढ़ा कमरे में प्रविष्ट हुआ। उसे अच्छी तरह मालूम होने लगा कि मैं उन्हीं काले चमकीले नेत्रों के सामने खड़ा हूँ।

थोड़ी देर निस्तब्धता रही। डबलडिक ने अपने हाथ का तिनका मुँह में रख लिया। जिव्हा की सहायता से हलक में पहुँच कर तिनका उसका श्वासावरोध करने लगा।

कप्तान ने कहा, "डबलडिक, तुम जानते हो कि तुम किधर जा रहे हो?"

काँपती आवाज में उत्तर मिला, "हाँ हुजूर, शैतान के पास।"

"बेशक, और बड़ी शीघ्रता से।"

रिचर्ड डबलडिक ने तिनके को अपने मुंह में घुमा कर दुःखित भाव से सहमतिसूचक सलाम किया।

कप्तान ने कहना आरम्भ किया, "सुनो डबलडिक। जब से, सत्रह वर्ष की अवस्था में, मैंने महाराज की नौकरी की है तब से अब तक मुझे कितने ही ऐसे मनुष्यों को जिनसे भविष्य में बड़ी आशा हो सकती थी, तुम्हारे पथ पर जाते देख कर बड़ा दुःख हुआ है। तुम्हारी ही भांति गर्ह्य जीवन व्यतीत करने के लिए दृढ़संकल्प अनेक मनुष्य मेरे दृष्टिमार्ग में आए हैं। परन्तु किसी को भी देख कर मैं इतना दुःखी नहीं हुआ जितना आरम्भ से ही तुम्हें देख कर हुआ हूँ।"

रिचर्ड भूमि की ओर देख रहा था। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे फर्श के ऊपर एक जाल-सा पुरता जा रहा है। साथ ही उसे यह भी दिखाई दिया कि कप्तान की प्रातःभोज की मेज की टांगें टेढ़ी होती जा रही हैं, मानों वे पानी में रक्खी हुई हों।

उसने उत्तर दिया, "मैं एक बहुत साधारण सैनिक हूँ। मुझ-जैसे क्षुद्र पशु का कैसा परिणाम होगा, इस प्रश्न का कुछ भी महत्व नहीं है।

ईषत्क्रोधमिश्रित गम्भीरता से कप्तान ने कहा, "तुम एक शिक्षित मनुष्य हो। औरों की अपेक्षा तुम्हारे लिए उन्नति के अधिक अवसर हैं। यदि जो तुम कहते हो वही तुम्हारा अभिप्राय है तो जितना मैं समझता था उससे कहीं अधिक तुम्हारा पतन हो चुका है। यह पतन कितना अधिक हुआ है इसका निर्णय तुम्हारे निन्दनीक जीवन की बातों को देखता और समझता हुआ मैं तुम्हारे ही ऊपर छोड़ता हूँ।"

डबलडिक ने उत्तर दिया, "मैं बहुत ही शीघ्र गोली से मारे जाने की आशा करता हूँ। और तब आपकी पलटन और यह दुनिया दोनों ही मुझ से मुक्त हो जाएँगी।"

मेज की टांगें और भी टेढ़ी होती जा रही थीं। अपनी दृष्टि को स्थिर करने के लिए डबलडिक ने ऊपर को देखा और उसकी कप्तान से चार आँखें हुई। लज्जा से उसने अपना हाथ नेत्रों पर रख लिया। आत्मापमान के कारण उसका हृदय फटा-सा पड़ता था।

"हाँ, डबलडिक। तुममें मैं यही भाव देखना चाहता हूँ। इसके बदले यदि कोई यहाँ आकर मेरी माता की भेंट के लिए पाँच हजार गिन्नी यहाँ रख जाए तो मुझे पसन्द नहीं। क्या तुम्हारी माता है, डबलडिक?"

"ईश्वर का धन्यवाद है कि वह अब जीवित नहीं है।"

"यदि तुम्हारी कीर्ति हरेक के मुँह पर होती, समस्त पलटन में, देश में यदि उसका गान होता तो तुम्हारी इच्छा होती कि तुम्हारी माता यह कहने के लिए जीवित होतीं कि यही तो मेरा बेटा है।"

"क्षमा कीजिए, कप्तान साहब। वह कभी मेरे विषय में कोई अच्छी बात नहीं सुन सकती थीं। उन्हें कभी गर्व से और आनन्द से अपने को मेरी माता बताने का अवसर नहीं मिलता। प्रेम और दया तो उनकी मुझ पर होती ही, परन्तु यह नहीं कि .. क्षमा कीजिए हुजूर! मैं एक नष्टसर्वस्व अभागा हूँ, बिलकुल, बिलकुल आपकी शरण में .." और डबलडिक ने दीन भाव से हाथ फैलाते हुए अपना मुख दीवार की तरफ फेर लिया।

कप्तान ने कहा, "मेरे मित्र "

"ईश्वर आपका भला करे," रिचर्ड डबलडिक ने रोते हुए कहा।

"यह तुम्हारे जीवन का बड़े संकट का समय है। थोड़े दिन तुमने अपने चलन को और इसी प्रकार रक्खा कि तुम गए। तुम शायद ठीक कल्पना न कर सको परन्तु मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इतना हो जाने पर फिर तुम्हारा कहीं पता नहीं रहेगा। कोई भी मनुष्य जो तुम्हारी तरह आत्मग्लानि से रो सकता है उन दंडचिन्हों को नहीं सह सकता जो तुम्हारे शरीर पर हैं।"

काँपते हुए धीमें स्वर मे डबलडिक ने कहा, "इसे मैं अच्छी तरह सम-झता हूँ, हुजूर।"

"परन्तु किसी दशा में भी हो, मनुष्य अपना कर्तव्य कर सकता है। ऐसा करने पर, दूसरे चाहे उसके परम दुर्भाग्य से उसकी प्रतिष्ठा न करें, पर वह आत्मसम्मान अवश्य प्राप्त कर सकता है। एक साधारण सैनिक को भी—एक क्षुद्र पशु को भी जैसा कि तुमने उसे अभी कहा है—इस विपन्न समय में बड़े अवसर प्राप्त हैं, यदि केवल वह कुछ सहानुभूतिशील साक्षियों के सम्मुख सदा अपना कर्तव्य पालन करता रहे। क्या तुम्हें सन्देह है कि ऐसा करने से तमाम रेजिमेन्ट, तमाम सैन्य-समूह, तमाम देश उसका यश नहीं गाने लगेगा? सँभलो डबलडिक, जब तक समय है सँभलो, और प्रयत्न करो।"

डबलडिक ने भग्न हृदय से उत्तर दिया, "करूँगा! करूँगा! मुझे केवल एक साक्षी चाहिए"

"मैं तुम्हारा आशय समझ गया। जाओ, मैं तुम्हारा सावधान और सच्चा साक्षी रहूँगा।"

डबलडिक घुटनों के बल बैठगया। उसने कप्तान के हाथ को चूमा। वह उठा और एक बिलकुल बदला हुआ मनुष्य बनकर बाहर निकला।

[२]

उस वर्ष, सन् १७९९ मे, फरासीसियों ने मिस्र में, इटली में, जर्मनी में, सर्वत्र ही अपना आधिपत्य कर रक्खा था। नेपोलियन बोनापार्ट ने भारतवर्ष में भी आक्रमण करने की तैयारी कर ली थी और बहुत-से मनुष्य आनेवाली कठिनाइयों के लक्षण देखने लगे थे। इसके अगले ही वर्ष जब अंग्रेजों ने आस्ट्रिया के साथ उसके विरुद्ध मित्रता की तो कप्तान टाटन की पलटन भारतवर्ष में थी और उसमें कारपोरल रिचर्ड डबलडिक से अच्छा काम करने-वाला और कोई 'नॉन कमीशन्ड ऑफिसर' नहीं था।

सन् १८०१ मे भारतीय सेना मिस्र के तट पर थी। अगले वर्ष अल्प-कालिक सन्धि की घोषणा होने वाली थी और समस्त सेनाएँ वापिस बुला ली गई थीं। सहस्रों मनुष्यों को इस समय यह बात मालूम थी कि सेना मे जहां कहीं कप्तान टाटन जाते थे वहीं, उनके पार्श्व मे, चट्टान के समान दृढ, सूर्य के समान सच्चा और कार्तिकेय के समान पराक्रमी प्रसिद्ध योद्धा सार्जेन्ट रिचर्ड डबलडिक भी उपस्थित रहता था।

सन् १८०५ ट्रैफेलगर के युद्ध के लिए तो प्रसिद्ध है ही, परन्तु इस वर्ष भारतवर्ष में भी बड़ी लड़ाई रही। हमारे सार्जेंट मेजर ने भी इस बार बड़े-बड़े काम किए। एक वार ध्वजावाहक के हृदय में गोली मार कर शत्रु झण्डा छीन ले गए। डबलडिक ने अकेले ही अति सघन विपक्षिदल में प्रवेश कर उसे मुक्त किया। ऐसे ही एक बार और उसने स्वय ही घोड़ों की टापो और चमचमाती तलवारों के बीच मे घुस कर अपने क्षतविक्षत कप्तान की रक्षा की थी। इन साहस के कर्मो का उसे पुरस्कार भी मिला। सार्जेन्ट रिचर्ड डबलडिक अब एन्साइन रिचर्ड डबलडिक हो गया था।

पताका मुक्त करने की बात सर्वत्र फैल गई। लोग उत्साह से उत्तेजित हो कप्तान टांटन की पलटन मे भर्ती होनेकी इच्छा करने लगे। इस प्रकार सैंकड़ों युद्धों में हानि सहती परन्तु शीघ्रही बड़े-बडे वीर योद्धाओं की सहा-यता पाकर विजयलाभ करती हुई यह पलटन सन १८१२ की बेडजाज की लड़ाई में सम्मिलित हुई। प्रत्येक अवसर पर ब्रिटिश सेना में उसका उत्साह बढ़ाया जाता था और उसके असामान्य पराक्रम की बात सुन कर लोगों की आँखों में आँसू आ जाते थे। समस्त सेनाओ मे बड़े-बड़े अफसरों से लेकर ढोल पीटनेवाले लड़के तक कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं था जो इस जनकथा को न जानता हो कि जहां कहीं भी दो मित्र—काले चमकीले नेत्रोंवाले मेजर टाटन और उनका अनुरक्त एन्साइन रिचर्ड डबलडिक—जाते वहीं अँग्रेजी सैन्य के शूर-से-शूर योद्धा भी उनका अनुसरण करने के लिए उन्मत्त हो पड़ते।

बेड़ब्राज़ की ही एक घटना है। कोई भीषण युद्ध नहीं होरहा था। अँग्रेजी सैनिक खाइयों में काम कर रहे थे कि सहसा अवरुद्ध फरासीसियों ने उनपर गोली बरसानी आरभ करदी। दोनों अफ़सर—मेजर और एन्साइन—उन्हें रोकने में प्रयत्नशील हुए और क्षण भर के लिए डबलडिक की दृष्टि अपने सैनिकों को उत्साहित करते हुए उनके साहसी अफ़सर पर जा पड़ी। परन्तु उसने उसे देख अच्छी तरह लिया। उसने देखा कि तलवार घुमा घुमाकर अफसर अपनी सेना को एकत्रित होने का आदेश कर रहा है। इसी समय उन लोगो ने उसके इशारे की आज्ञा पालन करते हुए गोलियाँ दागी और मेजर टाटन पृथ्वी पर गिर पड़े।

दस मिनट में गोलियाँ बन्द हुईं और डबलडिक उस स्थान पर आया जहाँ उसका सब से अच्छा मित्र पड़ा हुआ था। मेजर की वर्दी वक्षस्थल के ऊपर से हटाई गई। उनकी कमीज़ पर रक्त की तीन छोटी-छोटी बूंदे पड़ीं हुई दिखाई दीं।

उन्होंने कहा, "भाई डबलडिक, मैं मर रहा हूँ।"

उनके बराबर में झुक कर अपना हाथ उनकी गर्दन के नीचे लगाते हुए डबलडिक ने कहा, "ईश्वर के लिए ऐसा मत कहो टॉटन। मेरे उद्धारक, मेरे रक्षक देवदूत, मेरे साक्षी टाटन—ईश्वर के लिए ऐसा नहीं—मनुष्यों में कोई भी तुमारे समान दयाशील और शुद्धात्मा नहीं है।"

काले चमकीले नेत्र हँसे—नेत्र जो इस समय पीले रक्तहीन चेहरे के सयोग से और भी काले और चमकीले हो गए थे। उद्धारक का हाथ जिसे डबलडिक ने तेरह वर्ष पहले कातर भाव से चूमा था, उसके हृदय पर जा पड़ा। मेजर ने कहा, "मेरी माता को लिख देना। उनसे कहना कि हम लोग किस प्रकार मित्र हुए। इस बात से उन्हें वैसी ही तसल्ली मिलेगी जैसी कि मुझे मिल रही है। डबलडिक तुम्हारा फिर घरबार होगा।"

इसके बाद टॉटन नहीं बोले। उन्होंने धीरे-से अपने हवा में लहलहाते हुए बालों की तरफ़ इशारा किया। एन्साइन उनका आशय समझ गया।

यह देख कर एक बार फिर उनके होठों पर मधुर मुस्कराहट दौड़ आई और अपने सिर को डबलडिक के हाथ पर, मानों अनन्त विश्राम के लिए, रखकर तथा अपना हाथ उस मनुष्य के हृदय पर धरे हुए जिसमें उन्होंने एक जीवन का संचार कर दिया था, टाटन चल बसे।

कोई भी मनुष्य उस शोक के दिन डबलडिक को देखकर अपने आँसू नहीं रोक सका। रणभूमि में ही अपने मित्र की समाधि बना कर वह अब अनाथ और अकेला रह गया। अपने कर्त्तव्य के अतिरिक्त उसके लिए अब केवल दो चिन्ताएँ रह गई थीं—प्रथम तो, उनकी माता को देने के लिए उनके केश-गुच्छ को सुरक्षित रखना, और द्वितीय, उस फरांसीसी अफसर के साथ युद्ध करना जिसके उत्साह दिलाने से सैनिकों के गोली चलाने पर टाटन की मृत्यु हुई थी। लोगों में अब एक नई किम्वदन्ति फैल गई कि जिस समय भी डबलडिक और फरासीसी अफ़सर एक दूसरे के सामने पड़ेंगे उसी समय फ्रांस में रोना मच जाएगा।

युद्ध चलता रहा। डबलडिक के हृदय से फरांसीसी अफसर की छवि दूर नहीं हुई। अफसर भी युद्ध में ही था, परन्तु दोनों एक दूसरे के सामने नहीं आ सके। किन्तु लड़ाई समाप्त होने पर लूट के माल के साथ ये शब्द चारों ओर बड़े जोर से फैल गए कि लफ्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक के गहरी चोट आई है, परन्तु कोई अन्देशा नहीं है।

[३]

सन् १८१४ का ग्रीष्म आया। सैंतीस वर्ष का रुग्ण डबलडिक अपने हृदय के पास टाटन के बालों को रखकर इङ्गलैंड पहुँचा। उस रोज से कितने ही फरांसीसी अफसर उसने देखे थे। कितनी ही भयानक रात्रियों में उसने अपने मनुष्यों सहित लालटैनें लेकर रणभूमि में अपने जख्मियों को देखते समय अनेक दुर्बलीभत क्षत फरांसीसियों की रक्षा की थी। परन्तु मानसिक चित्र के साथ चित्रित का कभी सयोग नहीं हुआ।

यद्यपि डबलडिक कमजोर और पीड़ित थी तथापि उसने फ़ोम पहुँचने में, जहाँ टांटन की माता रहती थी, एक घंटे की भी देर नहीं की। उन मधुर और करुणाभरे शब्दों में जो आज स्वतः ही याद आते हैं "वह उसका इकलौता बेटा था और माता बेचारी विधवा थी।"

रविवार का सायंकाल था। महिला चुपचाप अपने बाग की खिड़की के पास बैठी हुई इंजील पढ़ रही थी। वह धीरे-धीरे काँपती हुई आवाज में उसमें लिखा हुआ यह वाक्य दुहरा रही थी, † "युवा पुरुष, मैं तुझ से कहता हूँ, उठ।"

डबलडिक को खिड़की के नीचे हो कर जाना पड़ा और उसे मालूम हुआ जैसे वही काले चमकीले नेत्र उसकी तरफ देख रहे हैं। देखते ही स्त्री के हृदय ने बता दिया कि यह कौन है। झपट कर वह द्वार पर आई और उसके गले से लिपट गई!

डबलडिक ने कहा, "उन्होंने ही मुझे विनाश से बचाया; मुझे आदमी बनाया और मेरी कलङ्क और अपयश से रक्षा की। हे ईश्वर, उनकी आत्मा को सदा शान्ति देना। जो उसे करना होता है वही वह करता है।"

महिला ने कहा, जरूर शान्ति देगा। मैं जानती हूँ कि वह स्वर्ग में है-ओह! मेरे लाल, मेरे हृदय के लाल।"

सेना में भरती होने के दिन से अभी तक कभी डबलडिक ने अपना सच्चा नाम, अथवा मेरी मार्शल का नाम, या अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाला कोई शब्द अपने उद्धारकर्ता को छोड़ और किसी से नहीं कहा था। वह पिछली घटना एक प्रकार से उसके जीवन से लुप्त हो गई थी। लोगों से एक भाँति का अज्ञात जीवन व्यतीत करना ही उसने अपना प्रायश्चित समझ रखा था। उसने निश्चय कर लिया था कि पुरानी बातें प्रकाशित कर अब अपनी कष्टलब्ध शान्ति को नष्ट न करूँगा। मरने के बाद लोगों को प्रकट हो जाएगा कि किस प्रकार मैंने प्रयत्न किया, कष्ट उठाए, परन्तु अपने लक्ष्य को नहीं

---

† यह शब्द इंजील के हैं।

भुलाया और उस समय यदि उन्होंने उस पर विश्वास करके मुझे क्षमा कर दिया—परन्तु इसके लिए यथेष्ट समय मिलेगा...हां, यथेष्ट समय मिलेगा।

परन्तु उस रात को उसे अपने उद्धारक के शब्द याद आगए—

"उनसे कहना कि हम लोग किस प्रकार मित्र हुए। इससे उन्हें वैसी ही तसल्ली मिलेगी जैसी मुझे मिल रही है। याद आते ही उसने माता से सब बातें कह डालीं। धीरे-धीरे डबलडिक अनुभव करने लगा कि अपनी प्रौढ़ावस्था में मुझे माता मिल गई। वह भी यह समझने लगी कि पुत्र-वियोग के पश्चात् मुझे दूसरा पुत्र मिल गया। अपने इंगलैंड-वास के समय में अपने ही घर की भाँति वह उस बाग में रहा जिसमें उसने एक अपरिचित की भाँति प्रवेश किया था। और जब स्वस्थ होने पर वसन्त मे वह अपने रेजिमेन्ट में फिर सम्मिलित हुआ, वह यह सोचता हुआ बाग से निकला कि आज पहली बार मे एक स्त्री का आशीर्वाद पाकर युद्ध में जा रहा हूँ।

[४]

पलटन, क्वाटर ब्राम और लिगनी होती हुई वाटरलू के प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र में पहुँची। इस समय भी डबलडिक के हृदय पर फरासीसी अफसर का चित्र अंकित था। परन्तु अभी तक एक बार भी असल व्यक्ति से उसका साक्षात्कार नहीं हुआ।

शीघ्र ही डबलडिक का प्रसिद्ध दल समर में प्रवृत्त हुआ और आज पहिली बार इतने घटनापूर्ण वर्षों के बाद उसे रुकावट का सामना करना पड़ा। डबलडिक को गोली लगी और वह गिर पड़ा। चैतन्य-संसार में लफ्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक के नाम का कोई मनुष्य नहीं रहा। परन्तु उसकी पलटन उसका बदला लेने के लिए उन्मत्त सी हो रही थी।

रसद के ले जाने, भारी गाड़ियों के चलने, तथा घोड़ों की टापों और बड़ी-बड़ी तोपों के नीचे दबने से सड़कों का चूरा-चूरा होगया था। जगह-जगह खाइयाँ, गड्ढे और नाले बन गये थे और मेंह के पानी से इनमें कीचड़ भर गई थी। सर्वत्र विध्वंस ही विध्वंस का दृश्य दिखाई देता था। मरे हुए

तथा मरते हुए मनुष्यों के बीच में झटके खाता हुआ, रक्त तथा कीचड़ से अत्यन्त विकृतांग होकर मनुष्य सा न मालूम होता हुआ, तथा आदमियों की कराहट और घोड़ों की हिनहिनाहट से विचलित न होता हुआ लफ्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक का; जिसकी प्रशंसाओं से इस समय सारा संसार गूँज रहा था, सजीव परन्तु संज्ञारहित तथा-स्पर्शज्ञानशून्य शरीर इन्हीं दुर्गम भागों में होकर ब्रुसेल्स पहुँचाया गया।

एक-एक सप्ताह कर ग्रीष्म के लम्बे सुहावने दिन बीतने लगे। युद्ध के विप्लव से बची हुई खेती पक गई और काटी जाकर खलिहानों में भरी जाने लगी। परन्तु डबलडिक का रुग्ण शरीर अस्पताल में पड़ा रहा। प्रतिदिन सूर्य उस जनाकीर्ण नगर में उदय होकर छिप जाता, प्रतिदिन चन्द्रमा वाटरलू के क्षेत्र में प्रशान्त रात्रि के मुख पर अपनी ठंडी उज्ज्वल चाँदनी बखेरता, परन्तु डबलडिक के लिए मानो यह सब कुछ नहीं था। सेनाएँ मुदित मन से ब्रुसेल्स में होकर आती-जाती थीं। भाई-बहन भाइयों को, माता-पिता पुत्रों को तथा स्त्रियाँ अपने पतियों को देखने के लिए वहाँ आती और आनन्द या सन्ताप के ढेर में से अपने भाग्य का हिस्सा लेकर चली जाती थीं। दिन में बीसों बार नगर में घटियाँ बजतीं, बीसों बार बड़े बड़े भवनों की छाया में परिवर्तन होता, सहस्रों लालटेनें सायंकाल को नगर में प्रकाश करतीं, सहस्रों मनुष्य इधर-उधर चबूतरों पर घूमते-फिरते और कितने ही ठंडी हवा के झोंके रात में सोने-वालों को आनन्द दे जाते, परन्तु इन सब से विरक्त एक दुग्धवत् श्वेत चेहरा निश्चल भाव से पलंग पर लेटा हुआ रहता था मानो किसी ने लफ्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक की समाधि पर करवट के लेटी हुई उसकी एक संगमरमर की मूर्ति बना कर स्थापित कर दी हो।

बहुत धीरे-धीरे अपने परिचित डाक्टरों तथा यौवन के सहचरों के मुखों का, और सब से अधिक अपनी परम प्रिय मैरी मार्शल के करुणाभरे और चिन्तायुक्त चेहरे का मुहूर्त-दर्शन कराने वाले एक दीर्घ समय-स्थल-व्यापी लम्बे स्वप्न से मानो उठ कर लफ्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक ने फिर जीवन प्राप्त किया। बहुत दिनों के पश्चात् आज फिर शरद्ऋतु के सायंकाल के समय

उसने साफ़ सुथरे खुले हुए शान्त कमरे में बैठ कर सामने के बरामदे में लास्य करते हुए वृक्षों की लहलहाती हुई पत्तियों और भीनी सुगन्धवाले पुष्पों को देखा। डबलडिक ने और दृष्टि बढ़ाई और उसे दिखाई दिया स्वच्छ विमल आकाश और उस पर पड़ती हुई सूर्य की लालिमामयी किरणें। अहो! कितना शान्त और मनोहर समय था। डबलडिक ने समझा कि मैं किसी दूसरे लोक पहुँचा हूँ। क्षीण स्वर में उसने कहा, "टाटन! क्या तुम मेरे पास हो?"

किसी का मुख उसकी तरफ़ झुका। यह टाटन का नहीं, उसकी माता का था।

उसने कहा, "मैं यहाँ तुम्हारी शुश्रूषा के लिए आई थी। कई सप्ताह से हम लोग तुम्हारे उपचार में लगे हुए हैं। क्या तुम्हें कुछ याद नहीं है?"

"कुछ नहीं।"

स्त्री ने उसके गाल का चुम्बन कर सान्त्वना देते हुए उसके हाथ को पकड़ लिया। डबलडिक ने पूछा, "पलटन कहाँ है? उसका क्या परिणाम हुआ? मैं तुम्हें माँ कह कर पुकारूँगा.. हाँ माँ, उसका क्या परिणाम हुआ?"

"बड़ी भारी विजय। युद्ध समाप्त हो गया और तुम्हारी पलटन ने सब से अधिक वीरता से काम किया।" उसकी आँखें चमक उठीं, होंठ हिले और सिसकते हुए उसने अपनी आँखों से आँसू टपका दिए। वह बड़ा कमज़ोर हो गया था—इतना कमज़ोर कि उसमें हाथ भी हिलाने की शक्ति नहीं थी।

उसने पूछा, "क्या अभी कुछ अँधेरा-सा हुआ था?"

उत्तर मिला, "नहीं तो।"

"शायद मुझे ही अँधेरा मालूम हुआ होगा। अभी काली छाया की तरह की कोई चीज़ इधर को गई थी। जैसे ही वह गई और सूर्य ने—आहा! सूर्य कैसा सुन्दर और सुखद मालूम होता है!—मैं क्या कहता था—और सूर्य ने अपनी किरणों से मेरे मुख का स्पर्श किया तो मुझे ऐसा

मालूम हुआ कि एक छोटा सा सुफेद बादल का टुकड़ा दरवाजे से होकर निकल गया। क्या कोई भी बाहर नहीं निकला था ?"

स्त्री ने अपना सिर हिला दिया और थोड़ी देर में डबलडिक को नींद आ गई। वह अब भी उसका हाथ पकड़े हुए कोमलता से उसे थपथपाती रही।

[६]

उस रोज़ से उसका स्वास्थ्य अच्छा होता गया। बहुत धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य लौट रहा था क्योंकि उसके सिर में बड़ी बुरी चोट आई थी और एक गोली उसके शरीर में भी लगी थी। परन्तु प्रतिदिन कुछ-न-कुछ लाभ होता जा रहा था। जब चार पाई पर लेटे-लेटे बोल सकने की यथेष्ट शक्ति उसमें आ गई तो वह प्रायः कहा करता कि माता मुझे सदा मेरे पुराने इतिहास की याद दिला देती। उसे अपने रक्षक के मरते समय के शब्द याद हो आए और उसने सोचा—"इससे उन्हें तसल्ली होती है।"

एक रोज़ सोकर उठने पर वह बड़ा सुस्त था। उसने टाटन की माता से कुछ पढ़कर सुनाने के लिए कहा। परन्तु मसहरी का पर्दा, जिसे वह उसके जागने पर उठा देती थीं, आज वैसा ही पड़ा रहा और एक स्त्री, जो उनका नहीं था, डबलडिक के कानों में पड़ा—" क्या तुम एक अपरिचित को देख सकते हो ? क्या तुम एक अपरिचित को देखना चाहोगे ?"

लफ़्टेनेन्ट डबलडिक को रिचर्ड डबलडिक के पुराने दिनों की याद हो आई। उसने कहा, "अपरिचित ?"

" हाँ, अब अपरिचित हूँ परन्तु पहले नहीं थी। रिचर्ड! प्यारे! इतने दिनों के बिछुड़े हुए रिचर्ड! मेरा नाम ."

रिचर्ड के शरीर में थरथरी होने लगी। उसने व्याकुल होकर कहा, "मैरी.. "

स्त्री ने उसे अपने हाथों में पकड़ लिया और उसका सिर अपनी गोद में रख कर कहा, "नहीं रिचर्ड! मैं उतावली में की हुई किसी प्रतिज्ञा को

भग नहीं कर रही हूँ। यह जो तुम से बोल रहे हैं मेरी मार्शल के होठ नहीं हैं। मेरा दूसरा नाम है। मैंने विवाह कर लिया है।"

"विवाह ?"

"हाँ। क्या तुम ने मेरा नया नाम नहीं सुना ?"

"नहीं।"

"फिर सोचो रिचर्ड ! क्या तुम्हें विश्वास है कि तुमने मेरा नया नाम कभी नहीं सुना ?"

"कभी नहीं।"

"मुझे देखने के लिए अपना सिर मत हिलाओ, प्यारे रिचर्ड ! जब तक मैं अपनी कहानी कहूँ तुम उसे ऐसे ही रहने दो। मैं एक बड़े उदार और उच्चहृदय मनुष्य को प्रेम करती थी—अपने हृदय से प्रेम करती थी। भक्ति और परम श्रद्धा से वर्षों तक मैं उसे प्रेम करती रही—उस समय भी जब कि मुझे उसके लौटने की कोई आशा नहीं थी, जब कि मैं उसके श्रेष्ठ गुणों तक को नहीं जानती थी, जब कि मैं यह भी जानती थी कि यह जीवित भी है या नहीं। वह एक वीर योद्धा था। सहस्रों मनुष्य उसे चाहते थे और उसकी प्रतिष्ठा करते थे। इसी समय मुझे उसके प्रिय मित्र की माता मिलीं। उन्होंने मुझे बताया कि अपनी विजय के सुदीर्घ समय में एक बार भी वह मुझे नहीं भूला। वाटरलू के युद्ध में क्षत होकर वह मृतप्राय अवस्था में यहाँ, ब्रुसेल्स में, लाया गया। मैं उसे देखने और उसकी शुश्रूषा करने के लिए आई, जिस काम के लिए कि मैं पृथ्वी के घोर से घोरतर निर्जन स्थान में भी प्रसन्नतापूर्वक जाने से न हिचकती। जब अपनी मोहावस्था के कारण वह सबको भूल जाता, उसे मेरी याद बनी रहती। जब उसे अत्यन्त कष्ट होता वह इसी गोदी में अपने सिर को रख कर, जिसमें इस समय तुम्हारा सिर रक्खा हुआ है, सतोष के साथ बिना किसी शिकायत के अपनी पीड़ा को सहन करता। एक बार वह मरा-मरा होगया था। उस समय उसने मुझसे विवाह किया, जिससे मरने से पहले वह मुझे अपनी स्त्री कह सके। और प्रियतम ! मेरा नाम, जो मैंने उसे विस्मृत रात्रि को ग्रहण किया..."

"मुझे याद आ गई ." उसने गद्‌गद्‌ होकर कहा, .."छायावत्‌ स्मृति अब दृढ़ होती जारही है। ईश्वर को धन्यवाद है कि इस समय मेरा मन बिलकुल स्वस्थ है मैरी! मेरी प्यारी मैरी! मेरा चुम्बन करो। अपने इस मस्तक को यहाँ आराम कराओ, नहीं तो कृतज्ञता के भार से मैं मर जाऊँगा। आह! उनके अन्तिम शब्द पूरे हुए। मेरा फिर परवार हुआ।"

इसके बाद दोनों सुखी रहे। डबलडिक को नीरोग होने मे बहुत समय लगा, परन्तु इससे उन दोनों के सुख मे किसी प्रकार की बाधा न आई। जिस रोज़ पहली बार तीनों व्यक्ति गाड़ी मे चढ़ कर सैर को निकले, तब मौसमी बर्फ पिघल चुका था। वसन्त ऋतु आरम्भ हो गई थी, तथा चिड़ियाँ झाड़ियों मे बैठी अपनी कर्णमधुर चहचहाहट सुना रही थीं। लोगों ने सड़क पर आकर कप्तान रिचर्ड डबलडिक को बधाई देते हुए हर्ष-ध्वनि की।

परन्तु पूर्ण स्वस्थता प्राप्त करने के लिए अभी इङ्गलैंड न जाकर उन्होंने वायु-परिवर्तनार्थ दक्षिण फ्रांस जाने का निश्चय किया। वहाँ पहुँच कर एविग्नन के समीप रुहोन नदी के तट पर उन्हें एक मनोनीत स्थान मिल गया, जहाँ छै महीने रह कर वे इङ्गलैंड को वापिस आए। तीन वर्ष बाद वृद्धावस्था के कारण टाटन की माता अधिक दुर्बल होगई थी। फ्रांस में वायु परिवर्तन से उन्हें लाभ हुआ था। अतः एक वर्ष वहीं रहने का विचार कर वह अपने स्वामि-भक्त नौकर को साथ लेकर फिर फ्रांस पहुँचीं। यह स्थिर हुआ कि वर्ष के अन्त में कप्तान रिचर्ड डबलडिक उन्हें फ्रांस जाकर लिवा लाएँगे।

[३]

फ्रांस पहुँच कर नियम पूर्वक वह अपने दोनों बच्चों को—इसी प्रकार वह अब उन्हें समझती थीं—पत्र लिखती रहीं। एक्स प्रांत के समीप ही वह एक किसान का मकान किराए पर लेकर रहने लगी थीं। पड़ोस में ही एक और कुटुम्ब रहता था जिसके साथ उनकी घनिष्टता होगई। घनिष्टता का आरम्भ कुटुम्ब की एक छोटी कन्या से हुआ था जो टाटन-जननी की प्रायः

अंगूर के बाग में मिलती तथा उनकी पुत्र-विषय की अथवा युद्ध-सम्बन्धी कहानियाँ सुनने से कभी नहीं ऊबती थी। कुटुम्ब के अन्य लोग भी उतने ही सौम्य और सज्जन थे जितनी कि बालिका, और धीरे-धीरे दोनों पक्षों में सौहार्द इतना बढ़ गया कि अंग्रेज महिला ने बारहवें मास उन्हीं के यहाँ रहने का उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वह ये बातें ज़रा-ज़रा करके अपने घर को लिख देती थीं और अपने अन्तिम पत्र में उन्होंने गृह-स्वामी के हाथ का लिखा हुआ एक विनय-पूर्ण परचा भी रख दिया जिसमें फ्रांस आने के अवसर पर "लब्धप्रतिष्ठ कप्तान रिचर्ड डबलडिक महोदय के सहवास-गौरव" के लिए प्रार्थना की गई थी।

कप्तान डबलडिक ने इसका सविनय उत्तर देकर सशरीर अपने पत्र का अनुगमन किया। तीन वर्ष की शान्ति के पश्चात् उस प्रदेश में यात्रा करते हुए कप्तान ने उस समय के लिए धन्यवाद दिया जो अब संसार को प्राप्त हुआ था। नाज पक कर सुवर्णमय हो गया था—वह अस्वाभाविक लौहित्य में रंगा हुआ नहीं था। बाले काट कर बाँध ली गई थीं—वह प्राणहर सेनाओं के नीचे कुचली नहीं जाती थीं। धुआँ सुखी-परिवारों की अंगीठियों से निकल कर वायु में मिल रहा था, जलते हुए मकानों की लपलपाती हुई ज्वालाओं से नहीं। गाड़ियाँ पृथ्वी के भिन्न-भिन्न पदार्थों से भरी हुई जा रही थीं—ज़ख्मियों और मुरदों से नहीं। डबलडिक को ये बातें बड़ी सुन्दर दिखाई देती थीं, क्योंकि उसने भयानक उलट-फेर को देखा था और जिस समय सायंकाल को वह अपने निमंत्रक के मकान पर पहुँचा उसका हृदय उल्लास और कोमलता से भरा हुआ था।

यह पुराने ढंग का बुर्जियोंदार एक बड़ा मकान था। दिन की गर्मी के बाद अब दरवाजों और खिड़कियों के परदे खोल दिए गए थे। मकान के चारों तरफ की अवस्था एक प्रकार की अव्यवस्था और लापरवाही की सूचना दे रही थी। गृह के सब द्वार खुले पड़े थे। कप्तान ने बाहर कोई साँकल या घन्टी न देखकर भीतर प्रवेश किया।

भीतर पत्थर का बना हुआ एक विशाल भवन था। यहाँ भी बजाने की कोई घंटी दिखाई न दी। कप्तान ने रुक कर अपने जूतों की खट-खट पर लज्जित होते हुए कहा, "बिस्मिल्लाह ही खराब हो रही है क्या ?"

इसी समय डबलडिक चौंक पड़ा। उसका मुख पीला पड़ गया और वह जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया। ऊपर की गैलरी में वही फरासीसी अफसर खड़ा हुआ उसे दिखाई दिया जिसकी प्रतिमा इतने समय से उसके हृदय पर अंकित थी। प्रतिमा और मूल के रूप, आकार आदि में कितना साम्य था।

अफ़सर शीघ्र ही अपने स्थान से हट कर अदृश्य हो गया और डबल-डिक ने जीने से उसके उतरने का शब्द सुना। डबलडिक के सामने आते ही अफसर का मुखमंडल खिल उठा। उसने कहा, "अहा, महाशय कप्तान रिचर्ड डबलडिक साहब हैं। आपको देख कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। क्षमा कीजि-एगा। सभी नौकर बाग़ में उत्सव मनाने चले गए हैं। इससे आपको द्वार पर कष्ट उठाना पड़ा। वास्तव में आज छोटी कन्या के जन्मोत्सव का दिन है जिस पर श्रीमती टाटन का इतना प्रेम और अनुराग है।"

अफ़सर का व्यवहार इतना निष्कपट और उदार था कि कप्तान अपना हाथ बढ़ाए बिना न रह सका। उसके हाथ से हाथ मिला कर अफ़सर ने कहा, "यह एक अंग्रेज वीर का हाथ है। मैं एक शूरवीर अंग्रेज का भी, चाहे वह मेरा शत्रु ही हो, उतना ही आदर कर सकता हूँ जितना अपने किसी मित्र का। श्रीमान् मैं भी एक सैनिक हूँ।"

डबलडिक मन में सोचने लगा, "जिस प्रकार मैंने इसे याद रक्खा है उस प्रकार इसने मुझे याद नहीं रक्खा। इसने मेरे मुख को उस रोज शायद इतने ध्यान से नहीं देखा था जितने ध्यान से मैंने इसके मुखको देखा था। तब किस प्रकार इससे वह बात कहूँ।"

अफसर अपने अतिथि को बाग़ में अपनी स्त्री के समीप ले गया, जो इस समय टांटन की माता के पास बैठी हुई थी। उसकी छोटी कन्या आनन्द से विह्वल होकर उससे लिपटने को दौड़ी तथा उसका नन्हा-सा पुत्र अपने

पिता की टाँगों से हिलगने के लिए घुटनों के बल भागने लगा। एक ओर कुछ दर्शक बालकों का समूह सोल्लास सगीत के सयोग में नृत्य कर रहा था, तथा एक तरफ मकान के तमाम नौकर नाच-नाच कर आनन्दित हो रहे थे। निर्मल आनन्द के इस मनोहर दृश्य ने शान्ति और सुख-चैन के उन दृश्यों की पराकाष्ठा कर दी, जिन्हें देखकर कप्तान को अपनी यात्रा में परम मन- सुख प्राप्त हुआ था।

परन्तु इस समय वह बड़े मानसिक कष्ट का अनुभव कर रहा था। सहसा झनझनाती हुई एक घंटी बजी और अफसर ने उसे उसके रहने के कमरे दिखालाने की प्रार्थना की। दोनों ऊपर जाकर उसी गैलरी में पहुँचे जहाँ से अफसर ने कप्तान को देखा था और तब खूब सजे हुए एक विशाल कक्ष ने, जिससे लगी हुई ही एक दूसरी कोठरी भी थी, कप्तान रिचर्ड ने डबलडिक का स्वागत किया।

अफसर ने पूछा, "आप वाटर्ल्लू के युद्ध में थे।"

"था। और बैडजाज के युद्ध में भी।"

अपने ही रूक्ष स्वर को सुनता हुआ वह बैठ कर सोचने लगा—'अब मैं क्या करूं! किस प्रकार इससे मैं वह बात कहूँगा?' दुर्भाग्य से इन दिनों पिछले युद्ध के कारण अंग्रेज और फरासीसी अफसरों में अनेक शोचनीय द्वन्द्व युद्ध हुआ करते थे और डबलडिक इस समय इन्हीं द्वन्द्व-युद्धों के विषय में विचार करता हुआ सोच रहा था कि किस प्रकार इस अफसर के अतिथि-सत्कार से छुटकारा पाया जाए।

इसी चिन्ता में भोजन का समय बीत रहा था। इतने में टॉटन-जननी आईं और कमरे के बाहर से ही बोलीं, "मुझे वह चिट्ठी तो दो जो मैरी ने मेरे लिए भेजी है।"

कप्तान ने सोचा—"और, सबसे अधिक तो उनकी माता की ही बात है। इन्हीं से मैं यह दारुण कथा कैसे कहूँगा?"

जननी ने फिर कहा, "मुझे आशा है, गृहस्वामी से तुम्हारी जीवन-व्यापनी मित्रता हो जाएगी। वह इतने सरल-हृदय और उदार हैं रिचर्ड, कि तुमसे उनका आदर करते ही बनेगा। आह, यदि वह जीवित होता"—और यह कर उन्होंने टांटन के बालों वाले तावीज को चूम लिया—"तो वह अवश्यपूर्ण उदारता से उनके गुणों की प्रशसा करता और सचमुच सुखी होता कि वे बुरे दिन अब बीत गए हैं जिसके कारण ऐसा मनुष्य उसका शत्रु हुआ।"

माता यह कह कर चली गई।

डबलडिक उठ कर प्रथम उस खिड़की के पास गया जहाँ से बाग में नृत्य-गान दिखाई पड़ता था, और तब दूसरी पर, जहाँ से शान्तिपूर्ण अगूर की लताओं का हँसता हुआ दृश्य दृष्टिगोचर होता था। उसने ओव्हान करते हुए कहा—"खोए हुए मित्र की पवित्र आत्मा! क्या यह तुम्हारा ही प्रभाव है कि मेरे हृदय में सद्विचार उत्पन्न हो रहे हैं! क्या तुम्हारी ही कृपा से इस मनुष्य से मिलने को आते हुए रास्ते भर मुझे बदले हुए समय की धन्यता के चिन्ह दिखाई दिए हैं! क्या तुमने ही अपनी भग्न-हृदया माता को मेरा प्रतिहिंसक हाथ रोकने के लिए भेजा है? क्या तुम ही मेरे कान में कह रहे हो कि इस मनुष्य ने तेरी ही भांति केवल अपने कर्तव्य का पालन किया? मेरे उद्धारक की, मुझे नवजीवन प्रदान करने-वाली आत्मा! यदि तुमने मेरा हाथ न पकड़ा होता तो अब तक न मालूम मैं कब का पाताल में पहुँच गया होता।

डबलडिक हाथों के बीच में अपने सिर को रख कर बैठ गया, और जब वह उठा तो उसने अपने जीवन की यह दूसरी दृढ़ प्रतिज्ञा की कि—"दोनों के जीते जी, न तो फरासीसी अफसर को, न टांटन की माता को और न किसी और ही व्यक्ति को कभी मैं उस बात को बताऊँगा जिसे केवल मैं ही जानता हूँ"

जब रात को सब लोग भोजन करने बैठे तो उसने अपने गिलास से अफ़सर के गिलास को छूते हुए, सब अपराधों के क्षमा करने वाले ईश्वर के नाम पर, हृदय ही हृदय में उसे क्षमा कर दिया। *

* चार्ल्स डिकेन्स की एक अँग्रेजी कहानी।

तितली

[१]

हम दोनों साथ-साथ खेले थे। स्मृति-विकास के पथ परिच्छेद से हमारे सयोगी जीवन के छोटे से ग्रन्थ में कभी कोई ऐसा पृष्ठ नहीं खुला जिसमें हमारे निरन्तर साहचर्य का कोई मधुर तथा अन्तस्तल-मोदी दृश्य अंकित न हो। जिस समय प्रातःकाल की सलज्ज समीर अपनी भीरु गति से समस्त प्रकृति को चचल कर देती थी उस समय हम दोनों कभी विन्ध्याचल के किसी ऊँचे टीले पर बैठ कर अपने घोंसलों से निकली हुई चिड़ियों का कर्ण-मधुर चुहचुहाना सुन कर तन्मय हो जाते थे, कभी सरिता की तरंगराजि को क्रीड़ा करते देख स्वय भी उसका अनुकरण करने की निष्फल चेष्टा करते थे और कभी अपने पुराने झरने के स्वच्छ जल में एक दूसरे को ढकेल कर खिलखिला कर हँस पड़ते थे। हँसते-हँसते उसके गाल, और शायद मेरे भी, अनार के फूल हो जाते थे और तभी सूर्यदेव शायद हमारी शरारत का दंड देने के लिए अपनी प्रथम किरण का प्रहार हम ही पर करते हुए हमारी आँखों को चौंधिया देते थे। परन्तु हम तो प्रकृति के निर्माय शिशु ठहरे, हम इसे भी खेल ही समझते और अपनी एक आँख मीच कर, मानो सूर्यदेव को चिढाने के लिए, उनकी तरफ खूब देखते, खूब देखते। इसी तरह समय बीतता और दिन चढ़ जाता।

हम लौट कर अपनी गुफा में चले जाते। मार्ग मे पड़ने-वाले फल-वृक्ष पवन की प्रेरणा से अपने हाथ बढ़ा कर हमें अपने फलों की भेंट देते और हम स्वीकार कर खा जाते। यह हमारा स्वभाव था—खाने के उद्देश्य को हम नहीं समझते थे—भूख ने हमें कभी नहीं सताया था। इसके बाद गुफा का द्वारा दिखाई देता और हम दोनों सस्पर्द्ध हो कर उसकी ओर दौड़ते। हम में से जो कोई पहले पहुँच जाता वही दूसरे को खूब बनाता। तब हम क्या

करते। चिढ़ाने के बाद क्षमा माँगते, रूठ जाने पर मनाते और फिर उत्सुकता के साथ एक दूसरे की गोदी में पड़ कर सो जाते। आह! उस समय हमारा वह सुख कितना अधिक होता, किनना शुद्ध होता, कितना निष्पाप होता। ससार के प्राणी क्या कभी उसका अनुभव कर सकते हैं?

सध्या होते ही हम फिर अपनी गश्त को निकल पड़ते। यदि हमारा प्रात भ्रमण निर्मल आनन्द का मन्दवाही स्रोत शिशु था तो यह परिणत वेगवाला गम्भीर नद। यदि उस समय प्रकृति का निरूपण होता था तो इस समय उसका अनुकरण। यदि दिनारम्भ में सूर्यदेव की धृष्ठता पर उनको चिढाने का कार्यक्रम जारी रहता तो दिनान्त में चन्द्रदेव की वत्सला पर विमुग्ध होकर उनकी ओर प्रेमभरी दृष्टि से घटों तक देखना। चिड़ियों का फुदकना देख कर हम दोनों भी फुदकने लगते, हरिण-हरिणी का उछलना देख कर हम उछलने लगते और खरगोश का भागना देख कर हम भागने लगते! जहाँ दो वृक्ष अपनी अपनी शाखाएँ गूँथ कर नृत्य अथवा आलिगन का सा अभिनय करते वहीं---उनके नीचे--हम दोनों भी अपने-अपने उठे हुए हाथ मिलाकर उनकी प्रेम क्रीड़ा की नक़ल करते। साराश, इसी प्रकार हमारा वह सुख-परिप्लुप्त जीवन, समय के प्रवाह में हिलोरें खाता हुआ न मालूम किस अक्षय आनन्द की ओर द्रुत वेग से चला जा रहा था। परन्तु अदृष्ट! तूने हमारा वह सुख क्यों छीन लिया? समय! तूने हमारे वे दिन कहाँ खो दिए?

[२]

हमारे माता पिता कौन थे? मैं इसे क्या जानूँ। अपने प्रकृति जीवन के दिनों मे तो यह प्रश्न कभी मेरे हृदय में उत्पन्न भी नहीं हुआ। जब से मैंने होश सँभाला तब से मुझे एक वृद्ध सज्जन की याद है जिन्हें हम उनकी आज्ञानुसार दादा कहा करते थे। इन्हीं के साथ हम अपनी गुफा में रहते थे और उन्हों ने ही हमे बोलना सिखाया था। वे हम दोनों को नदी मे नहाने लिवा जाते थे और उनके साथ घूम-घूम कर ही हम ने उपत्यका के उन स्थलों को देखा था जो हमारे नित्य के प्रिय आश्रय-स्थान हो गए थे।

सुबह का समय था। दादा सो कर उठे थे। हम दोनों भी पत्थर के फर्श पर बैठे आँखें मल रहे थे। इतने में दादा ने कहा, "आँखें क्या मलते हो? चलो उठो, जगल हो आएँ।" हम दोनों ने भी प्रेम से कहा, "चलो दादा।" हम उन्हें बड़ा प्रेम करते थे।

तीनों जन गुफा से निकल कर नदी की ओर चल दिए। प्रात: कृत्य से निपट कर हम ने नहाना आरम्भ किया। दादा हम दोनों को स्नान करा कर बाद में स्वय नहाने गए। उन्होंने डुबकी लगाई। परन्तु यह क्या! इतनी देर हो गई, फिर भी वह जल के भीतर से नहीं निकले। प्रतीक्षा में कितनी ही देर हो गई परन्तु उनके दर्शन नहीं हुए। हाय, हमारे दादा को कौन ले गया!

अब से हम अनाथ हो गए। दादा के बिना जगल सूना लगने लगा। रोते-रोते गुफा में पहुँचे, पर वहाँ भी जी न लगा। जैसे-तैसे कुछ दिन सप्ताह महीने बीत गए। दादा की स्मृति भी कम हो चली। हम फिर सुख का अनुभव करने लगे।

मैं उसे तितली कहा करता था। दादा के लुप्त होने के बाद से तितली मुझे ही अपना सब-कुछ समझने लगी थी। वह एक क्षण के लिए भी मुझ से अलग न होती। एक रोज़ जब हम सन्ध्या-शोभा का अवलोकन करते हुए टहल रहे थे हम उसी जगह आ पहुँचे जहाँ हमारे दादा विलीन हुए थे। उस स्थान को देखते ही तितली कुछ गम्भीर हो गई। बोली, "यह नदी बड़ी बुरी है। इसी ने तो दादा को छीन लिया था। अच्छा अब हम इसमें कभी न नहाएँगे।"

मैंने कहा, "क्यों?"

तितली ने उत्तर दिया, "जो इसने अब की तुम्हें भी छीन लिया तो मैं क्या करूँगी?"

मैंने कहा, "मुझे यह न छीन सकेगी।"

"अच्छा, और जो मैं ही इसमें रह गई तो तुम क्या करोगे?"

"तो मैं भी तुम्हारे पीछे कूद पड़ूँगा।"

"नहीं, अब हम इसमें नहीं नहाएँगे।"

"अच्छी बात है, अब नहीं नहाएँगे।"

तितली ने पुनः कातर होकर कहा, "देखो, हम तुम कभी अलग न होंगे।"

मैंने आग्रह से उत्तर दिया "कभी नहीं, तितली।"

"और जो तुम किसी दूसरी तितली के साथ घूमने लगे तो?"

"दूसरी तितली कहाँ से आएगी?"

"यह जो इतनी उड़ती हैं।"

"अरे नहीं, ऐसा भी कहीं होता है? तुम तो पागल हो।"

तितली सन्तुष्ट हो गई। हम दोनों गुफा को लौट आए।

[३]

दादा को छीन कर भी भाग्य से हमारा निर्दोष सुख न देखा गया। अथवा हमारा क्यों—मालूम होता है भाग्य को मुझ से ही अधिक शत्रुता थी। पहाड़ी पर उछलते-कूदते एक रोज़ सहसा मैं नीचे गिर पड़ा और बेहोश हो गया। न मालूम कितने घंटे या कितने रोज़ बाद मुझे होश आया, परन्तु आँख खुलने पर तितली वहाँ न दिखाई दी। चोट लगने के कारण शरीर के भिन्न-भिन्न अंशों में बड़ी पीड़ा हो रही थी। पर तितली की अनुपस्थिति के कारण मैं सब-कुछ भूल गया। शीघ्र ही उठ कर उसके अनुसंधान के लिए चल पड़ा।

तमाम जंगल छान डाला। एक-एक गुफा देख ली। कोने-कोने में भटक आया। पर तितली का कहीं पता न लगा। कैसी विपत्ति! अब क्या करूँ? सो क्या तितली की शंका ही सत्य हुई? हाँ, ठीक है, उसके बिना अब मैं क्या करूँगा।

वह रमणीय उपत्यका मेरे लिए भयानक हो गई। उसमें एक क्षण भी रहना अब मुझे भारी हो गया। अगले ही रोज निरुद्देश्य की भाँति मैं वहाँ से चल दिया।

[४]

सेठजी का काम खूब चलता है। लोग कहते हैं इसका कारण मैं ही हूँ। अब से तीन वर्ष पहले कारोबार के लेने-देने पड़ रहे थे। परन्तु जब से मैं उनके यहाँ आया हूँ तब से उनकी दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। इसमें, मनुष्यों का कहना है कि मैं ही भाग्यवान हूँ जो अपनी जंगली अवस्था में पदार्पण करते ही सेठजी को मैंने उठा दिया। सेठजी के नौकर मुझे भटकता हुआ देख कर अपने साथ लिवा लाए थे और यहाँ सेठजी ने साल-डेढ साल तक मुझे पढना-लिखना सिखाया था। साथ ही साथ दूकान का भी थोड़ा बहुत काम सिखाते-जाते थे। अब पिछले साल भर से मैं ही उनकी दूकान का कर्ता-धर्ता हूँ। पिछले वर्ष मेरा विवाह भी हो गया है और जो लोग ऊपर-वाली बातें कहते हैं उन्हीं के मत के अनुसार "यह जंगली जानवर ऐसा तक़दीर-वाला और बुद्धिमान निकला कि तीन ही बरस में दुनिया की सब बातों से अच्छी तरह जानकार होगया।" उनकी ये बातें सत्य हैं और मुझे भी अपनी बुद्धिमानी की प्रशंसा सुनकर बहुत लोगों की मत्सरता को देखकर अपने ऊपर अभिमान होने लगता है। परन्तु जब वे मुझे 'जंगली जानवर' कहते हैं, तब तो मेरे क्रोध का ठिकाना नहीं रहता।

मुझे अब अपना पिछला जीवन याद नहीं। तितली की स्मृति भी अधिक नहीं सताती। दुनिया और दुनिया के सुख ही मेरे लिए सब-कुछ हैं। मेरी स्त्री भी मुझे मेरे इस मनोभाव में काफी सहायता पहुँचाती है। मैं उसे प्यार करता हूँ और वह मुझे प्यार करती है। उसके साथ मुझे स्वर्ग का आनन्द मिलता है।

एक रोज संध्या के समय मैंने अपनी स्त्री से कहीं नगर के बाहर घूमने जाने का प्रस्ताव किया। वह सहमत होगई। मैंने सेठजी की घोड़ा-गाड़ी माँग ली। गाड़ी शहर के बाहर चलने लगी। थोड़ी देर में वही पुरानी उप-

त्यका आगई। एँ, तब क्या वह जगल शहर से इतना समीप था ? मैंने कहा, "हाँके चलो।"

अपने बाल्य-निवास गुफा के सामने मैंने गाड़ी रुकवाई और स्त्री को साथ लेकर उस परिचित स्थान की सैर कराने चला। गुफा में घुसना ही चाहता था कि झट से एक बड़े से पत्थर द्वारा दरवाजा बन्द होगया। इसके साथ ही यह आवाज सुनाई दी, "अब यह गुफा तुम्हारे योग्य नहीं है। नगरों के ऊँचे-ऊँचे महल ही तुम्हारे निवासालय होने के योग्य हैं।"

मैं भौचक्का हो कर चारों तरफ देखने लगा, परन्तु जो कुछ मैंने देखा उस पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने देखा कि मुझसे दो-चार गज़ दूर एक पत्थर पर खड़ी तितली ये शब्द कह रही है। मेरे नेत्र उसकी तरफ एकटक होकर रह गए। मैं उसकी तरफ अग्रसर हुआ भी। परन्तु उसने कुछ कदम पीछे हटकर कहा, "नहीं, अब ऐसा दुस्साहस मत करना। अब तुम मेरे नहीं रहे। तुमने दूसरी तितली को अपनी सहचरी बनाया है।" यह कह कर उसने मेरी स्त्री की ओर उँगली उठा दी और मैं स्तम्भित रह गया। मेरे होठ कुछ कहने के लिए खुले, परन्तु उनसे कोई शब्द नहीं निकला। इसके बाद तितली फिर कहने लगी, 'तुमने प्रतिज्ञा भग की है। तुमने मुझे धोखा दिया है। परन्तु खैर, तुम सुख से रहो। घबराना मत, मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगी कि वह तुम्हें इसके लिए दड न दें।

सुनते ही एक चीत्कार के साथ मैं कह पड़ा—"दन्ड ! ओह, दड !" इसी समय मेरी आँख खुल गई। मुझे मालूम हुआ कि यह स्वप्न था।

उस दिन से मेरा मन बड़ा विक्षुब्ध रहने लगा। मैं प्रायः इस घटना पर सोचा करता। परन्तु आज तक मैं नहीं जान सका कि उस स्वप्न का क्या अर्थ था। *

---

* एक अग्रेजी कहानी के आधार पर।

सब की जड़

एक रूपक

रूपक के पात्र

एकुलीना—सत्तर वर्ष बूढ़ी एक पुराने ढंग की स्त्री। फुर्तीली और नेक।

माइकेल—उसका पुत्र। आयु पैंतीस वर्ष। अपने ही में मस्त रहनेवाला, कुछ अहंकार और तेज़ स्वभाव-वाला।

मरथा—माइकेल की स्त्री। आयु बत्तीस साल। बहुत बोलती है और हर समय बड़बड़ाती रहती है।

पराशा—मरथा और माइकेल की कन्या। आयु दस वर्ष।

तारस—गाँव का मुखिया। गंभीर और कुछ अहंकारी। धीरे-धीरे बोलता है।

आवारागर्द—आयु चालीस वर्ष। बड़े-बड़े और शिष्ट शब्द बोलना चाहता है। मदिरापान के बाद विशेष स्वच्छन्दता का व्यवहार करने लगता है।

इगनाट—चालीस वर्ष की आयु-वाला एक मूर्ख हँसोड़। हरदम प्रफुल्लित रहता है।

पड़ोस—आयु चालीस वर्ष। चलता पुर्ज़ा।

पहला अङ्क

मौसम पतझड़—एक किसान की झोंपड़ी जिसमें एक छोटीसी कोठरी अलग बनी हुई है—एकुलीना बैठी काम कर रही है—मरथा आटा मल रही है—पराशा झूला झूल रही है।

मरथा—रा—आम ! मेरे दिल पे भारीपन सा मालूम हो रहा है और धक्-धक् सी हो रही है । जान पड़ता है कोई कलेस होगा । अब तलक उनके वहाँ ठहरने की जरूरत नहीं थी । सायद आज भी वैसे ही होगा जैसे कल उन्होंने लकड़ी बेच के आधे दामों की दारू पी ली थी । और फिर सब बातों का दोस मेरे सिर पे .

एकुलीना—कलेस की बात क्यों सोचे है, बहू । अभी भौतेरी सबेर है और सहर भी तो भौत दूर है । इस बखत तो ..

मरथा—सबेर तुम किसे कहो हो जी ? एकिमिच आ भी गया । वह तो उनके बाद गया था, और वे अभी तलक नहीं आए । बस मुसकिल ही मुसकिल है । दिन भर दिक होते रहो . ये ही हमारा तो सुख है ।

एकुलीना—एकमिच तो अपना बोझ सीधा किसी गाहक के पास ले गया था । माइकेल तो अपना बोझ बेचने को बजार मे गया होगा ।

मरथा—जो वह अकेले होते तो मुझे कोई भै नहीं था, पर उनके साथ में इगनाठ भी जो है । जब कभी वह उस दईमारे के—राम भला करे,-मुँह से गाली क्यों निकले हैं—जब वह उस इगनाट के साथ होवें हैं तो दारू पिए बगैर नहीं मानते । हमारा तो भाग ही ऐसा है । अबेर सबेर रोज, पिसते रहो—सब कुछ हमारे ही सिर पे है । जो इससे कुछ फायदा भी होता तो! पर ह्याँ तो दिन दिन भर मरो, दिन-दिन भर मरो और क्या सुख है ..

द्वार खुलता है । एक फटे हाल आवारागर्द के साथ तारसका प्रवेश ।

तारस—राम राम । मैं एक आदमी लाया हूँ । इसे रात-भर रहने के लिए जगह की जरूरत है ।*

आवारा०—जै रामजी की । जै रामजी की ।

---

* गाँव में ऐसा नियम था कि यदि कभी वहाँ कोई आश्रय-विहीन या अनाथ व्यक्ति आता तो गाँव का मुखिया उसे किसी ग्रामवासी के यहाँ ठहरा दिया करता था ।

मरथा—हमारे ही ह्याँ बेर-बेर इन लोगों को क्यों लाते हो, चौधरी ? दूसरों के ह्याँ क्यों नहीं ठहराते ? अभी पिछले बुद्ध को ही तो हमने एक आदमी को ठहराया था। इन्हें पनीड़ा के ह्याँ ले जाया करो। उसके कोई बाल-बच्चे भी नहीं हैं। हमे अपने ही घरुए से फुरसत नहीं मिलती, इनकी कौन देख-भाल करे। हाँओं, सदा हमारे ही ह्याँ ले आवें हैं जो कोई भी हो

तारस—हर आदमी बारी-बारी से ही तो उन्हे ठहराएगा न, मरथा।

मरथा—हाँ जी, ये कह देना बड़ा आसान है कि बारी-बारी से। पर मेरे ह्याँ तो बालक-बच्चे हैं और मालक भी आज घर पे नहीं है।

तारस—खैर, इस आदमी को आज रात तो यहाँ सो ही जाने दो। जिस जगह सोएगा वहाँ तो कुछ खराब कर ही नहीं देगा। कल फिर ..

एकुलीना—(अनाथ से) अजी तो, ओ—ओ, बैठ जाओ फिर। अच्छी बात है, आज हमारे ह्याँ ही सही। इनके सोने से कोई जमीन तो घिस ही नहीं जाएगी।

आवारा०—मेरा धन्नवाद। हो सके तो मुझे कुछ मुँह चलाने को मिल जाए।

मरथा—अभी जरा बैठके कुछ देखो-सालो, कुछ कहो सुनो कि खाने की ही जल्दी पड़ गई ? क्यों, दिन भर गाँव में कुछ नहीं माँगा क्या ?

आवारा०—(निश्वास छोड कर) क्या करूँ, मालकिन। अपनी आबरूई का ख्याल करके मुझसे माँगा नहीं जाता। पर, अपना कहने को कुछ नहीं होने से...

(एकुलीना उठ कर डबलरोटी ले आती है और उसमें से थोड़ा-सा टुकड़ा तोड कर अनाथ को देती है)

आवारा०—धन्नवाद *। (रोटी लेकर बेसब्रेपन से खाता है।)

---

* आवारागर्द का कुछ पढ़े-लिखे आतंकवादियों से सम्पर्क रह चुका था। इसलिए वह जब दूसरों से मिलता तो, पढ़ा-लिखा न होने पर भी, दूसरों पर अपनी शिष्टता और पढ़े-लिखे-पन का प्रभाव डालने का इच्छुक रहता।

तारस— और माइकेल आज कहाँ है जी ?

मरथा—घोड़ों की घास का गट्ठर पैंठ में ले गए थे सो अभी तलक तो लौटे नहीं। अब तलक तो आ जाते। कोई-न-कोई बात हुई होगी।

तारस—बात ऐसी क्या हुई होगी ? क्यों ?

मरथा—और नहीं तो क्या ! कोई अच्छी बात थोड़ेई, बुरी ही बात की आसा करनी चाहिए। घर से बाहर होते ही वह हम सब की बात भूल जाते हैं। मैं तो समझूँ हूँ नसे मे भरे हुए ही आएँगे।

एकुलीना—(कातने के लिए बैठ कर मरथा की ओर सकेत करती हुई तारस से।) इससे चुप बैठा ही नहीं जाता। मैं कहा करूँ हूँ न, कि औरतों को सदा कुछ-न-कुछ बड़बड़ाने के लिए चाहिये। सो, वही बात इसकी है।

मरथा—अजी, जो वह अकेले होते तो मुझे कोई भै नहीं था। पर उनके साथ में इगनाट भी तो है।

तारस—(मुस्करा कर) हां हां, ठीक है। इगनाट को तो हर दम ही एक-दो चुल्लू मिलता रहना चाहिए।

एकुलीना—तो क्या माइकेल जानता नहीं है कि इगनाट कैसा सकस है। इगनाट एक ढग का आदमी है और माइकेल दूसरे ढग का।

मरथा—हाँ हाँ, तुम्हारे लिए तो कह देना बड़ा आसान है। इसे तो मैं ही जानू हूँ कि वह कैसी पिएँ हैं। हाँ, जिस बखत वह पिए नहीं होते उस बखत उनकी बराबर दूसरा आदमी नहीं, पर जब वह नसे में होवे है तो—क्या तुमने देखा नहीं ? फिरतो कोई कुछ बोल ही नहीं सकता ! जो कुछ भी कहो उसे उलटा ही समझे हैं।

तारस—पर जरा तुम औरतें अपनी तरफ भी तो देखा करो। अगर एक बखत किसी ने जरा सी पी भी ली और वह अट्ट सट्ट बकने भी लगा तो क्या होगया। सो-सा के वह अपना नसा उतार देता है और फिर सब ठीक-ठीक हो जाता है। पर तुम लोग तो हर दम उसके पीछे ही पड़ी रहती हो।

मरथा—जब वह नसे में होवे हैं तो किसी तरह राजी होते ही न
कोई कितना ही सिर मारे चाहे ..

तारस—पर तुम्हें भी इतना जरूर समझना चाहिए कि कभी एकाध घूँट पीए बगैर हम लोग कैसे रह सकते हैं। तुम्हारा औरतों काम घर के भीतर का है पर मरदों को तो काम के बखत या साथियों बैठ कर पीना ही पड़ता है। बस, जो कोई भी पीता है इसी तरह पीता और इसमें नुकसान भी क्या है?

मरथा—तुम जो चाहो सो कहो, पर हम औरतों की बड़ी है—सच्चो, बडी आफत है। जो कहीं तुम लोगों को भी हमारा कुछ क करना पड़ता तो . ओहो, तुम्हारा तो राग ही दूसरा हो जाता . अ मलना, रोटी बनाना, उन्हें सेकना, कातना, बुनना, ढोरों की देख-भा दुनियाँ भर के काम हैं जी...बालकों को निहलाना-धुलाना, कपड़े धना खाना खिलाना—सब हमारे ही सिर पे हैं। और जो जरा-सी भी ब उनके मन के माफक नहीं हुई तो बस फिर तो...और जो कहीं वह हुए तब तो हरे राम! हमारी भी कैसी जिन्दगी है।

आवारा०—(रोटी चबाता हुआ) शच बात है। शच बात है! ए ही शब बातों की जड़ हैं!—यह शराब! ज़िन्दगी की तमाम मुशीबतें इशी ज़हरीली चीज़ शे पैदा होती हैं।

तारस—मालूम होता है तुम्हें भी इसने चौपट किया है।

आवारा०—नहीं, यह बात तो नहीं। पर मैं भी इशशे कुछ नुकशान उठा चुका हूँ। अगर मैंने शराब न पी होती तो मेरी जिन्दगी और ही होती।

तारस—मेरी समझ तो यह है कि कभी-कभी कायदे-माफिक पी लेने में कोई हरज नहीं है।

आवारा०—पर मैं कहता हूँ कि इशमें ऐसी ताकत मौजूद है जो इंशान को बरबाद करके ही छोड़ती है।

मरथा—येही तो मैं भी कह रही हूँ। चाहे जितनी दिक्कत उठाओ और भरसक सँभाल के काम करो पर इनाम मिलेगा यह कि खूब गालियाँ खाओ और कुत्ते की तरह पिटो।

आवारा०—इतना ही नहीं! ऐसे भी लोग होते हैं जो शराब पीकर अपने शिर को भी खो बैठते हैं और ऊटपटाँग काम करने लगते हैं। जब वे नशे में नही होते हैं तव तो उन्हें कुछ भी दो, जो उनका नहीं है उसे लेंगे ही नहीं। पर जब वे पिए होते हैं तव हरेक किसी की अच्छी चीज को हथिया बैठते हैं। इसीलिए वहुस्से लोग पिटते हैं और जेलखाने में ठूंश दिए जाते हैं। जब तक मैं नहीं पीता हूँ तब तक तो सब बातें ईमानदारी और मजे के साथ होती रहती हैं, पर जब मैं थोड़ी बहुत पी लेताहूँ—मेरा मतलब, जब दूसरे लोग पी लेते हैं तो जो कुछ भी उनके सामने आता है उसी को हथियाने लगते हैं।

एकुलीना—और मैं तो समझती हूँ यह सब अपना ही दोस है, सराब-घराब को तो लोग नाहक ही कहे हैं।

आवारा०—बेशक! जब तक कोई अच्छी तरह रहे, यह उसका ही दोश है। पर यह भी तो एक तरह की बीमारी ही है।

तारस—बहुत बढ़िया बीमारी। (अलग कोठरी में बन्द कर रखने से बड़ी जल्द अच्छी होती है) अच्छा, राम राम। अब जाता हूँ।

(जाता है।)

(मरथा हाथ धोती है और जाना चाहती है।)

एकुलीना—(अनाथ की रोटी समाप्त होगई देखकर) बहू, ओ बहू। इन्हें जरासी रोटी और तोड़ दे।

मरथा—चूल्हे में जाए वह। मुझे अपनी चाय का पानी उवालना है।

(जाती है।)

(एकुलीना उठकर थोड़ी-सी रोटी और तोड़ लाती है और आवारागर्द को देती है।)

आवारा०—धन्नवाद। मेरी भूख बहुत बढ़ी हुई मालूम होती होगी तुम्हें।

एकुलीना—तुम मजूरी करते हो क्या?

आवारा०—कौन? मैं? नहीं, नहीं मैं इजन-डराइवर था।

एकुलीना—और तुम्हें तनखा क्या मिलती थी?

आवारा०—मुझे शाठ-शत्तर रुपए महीना पड़ जाते थे।

एकुलीना—यह तो बड़ी अच्छी आमदनी थी। फिर तुम्हारी यह दीन हालत कैसे हो गई?

आवारा०—दीन हालत! कोई मैं ही एक ऐशा थोड़े ही हूँ। जमाना ही ऐसा खराब ओ गया है कि इशमें कोई भला आदमी गुजर कर ही नहीं शकता।

मरथा—(चाय का पानी लाती हुई) हा भगवान! आज वह जरूर पी के आएँगे। मेरा हिरदै कह रहा है।

एकुलीना—हाँ, आज तो वह कहीं मौज उड़ाने ही पहोंच गया दीखे है।

मरथा—अब देखलो। हम रात-दिन मरें-पचें, आटा मलें, रोटी बनाएँ, सूत कातें, कपड़ा बुनें, ढोरों को सम्भालें, सब कुछ अपने सिर पे लें (खटोले पर सोता हुआ शिशु मचलता है।) अरी ओ परासा, लौंडे को थपथपाती क्यों नहीं...ओहो, हमारी भी क्या जिन्दगानी है! इतने पे भी जो कहीं वह पिए हुए आ पहुँचे तो बस...सब औंधा गया। कोई भी बात उनकी मरजी—खिलाफ मुँह से निकली कि .

एकुलीना—(चाय बनाती हुई) बहू, चाय भी अब और नहीं रही है। क्यों तैंने उससे चाय लाने को कह दिया था क्या?

मरथा—हाँ, कह तो दिया था। अब देखो, लाएँ कि ना लाएँ। कह तो गए थे कि लेता आऊँगा पर वहाँ तो उन्हें घर की कोई सुध ही नहीं रहती...(चाय का सामान पटले पर रखती है।)

(आवारागर्द एक तरफ को हट जाता है।)

एकुलीना—हट क्यों गए? चाय नहीं पिओगे?

आवारा—मेहरबानी के लिए धन्नवाद। (अपना सड़ा हुआ सिगार, जिसे वह पी रहा था, दूर को फेंक देता है।)

मरथा—और तुम हो कौन जी, किसान या कोई और?

आवारा०—मैं तो न किशान हूँ और न कोई नवाब। मैं तो दुतरफे दरजे का हूँ।

मरथा—दुतरफा दरजा कसा? (चाय का प्याला देती है।)

आवारा०—धन्नवाद! दुतरफा दरजा ऐशा कि मेरा पिता पोलैंड देश का एक शेठ था। इशी तरह के और भी कई मेरे पिता थे। और मेरी माता भी दो थीं।

एकुलीना—हरे राम! हरे राम! यह कैसी बात कह रहे हो?

आवारा०—क्यों शीधी-शी तो बात है वही एक वेश्या थी और इशलिए वहुत शे पिता थे। और दो माता ऐशे हुई कि जिसने मुझे पैदा किया था वह मेरी थोड़ी ही उमर में मुझे छोड़ गई और फिर एक दरबान की औरत ने दया करके मुझे पाला। मेरे पूरे जीवन-चरित्र में बड़ी-बड़ी मुशीबतों की बातें हैं।

मरथा—लो, एक प्याला और लो। क्यों तुमने कुछ पढ़ा-लिखा भी है?

आवारा०—मेरी पढ़ाई-लिखाई भी कुछ ऐशी ही हुई। मेरी अशल माँ ने नहीं, बल्कि मेरी गोद की माँ ने मुझे एक लुहार के यहाँ नौकर करा दिया। वह लुहार मेरा पहला गुरु हुआ और उशका गुरूपना इस बात में था कि वह अपनी घनाय के ऊपर हथौड़ी के इतने घन नहीं चलाता था जितने

मेरे खोपड़ी के ऊपर चपत के। पर कितना ही मारा शही उशने मुर्फे, वह मुभ्फशे मेरी बुद्धि तो छीन नहीं सका...इसके बाद में एक तालेवाले के यहाँ गया। यहाँ मेरी कदर हुई और मैं कारीगरों का जमादार हो गया। इश बीच में मेरी पढे-लिखे लोगों से जान-पहचान हो गई और मैं एक राजनीति दल में शामिल हो गया। दिमागी शाहित्त मैं खूब शमभ्क लेता था और मैंने बहुत तरक्की कर ली होती क्योंकि मेरी बुद्धि बड़ी तेज थी।..

एकुलीना—जरूर! जरूर!

आवारा०—परन्तु इशी शमय एक उलट फेर हो गया। निर्दई शाशन ने लोगों को शताना शुरू किया और मैं जेलखाने में डाल दिया गया, याने मेरी आजादगी को हवालात हो गई।

मरथा—अरे! सो कैसे?

आवारा०—हमारे हकों के कारण।

मरथा—काहे के हक?

आवारा०—काहे के हक! हक ये हों कि मोटे लोग हर शमय दावतें क्यों उड़ाते हैं और मेहन्ती प्रजा को अपनी मेहन्त का फल क्यों नहीं मिलता।

एकुलीना—और यह नहीं कि मिहन्ती लोगों को ज़मीन भी मिल जानी चाहिए।

आवारा०—हाँ हाँ, वही, वही—भूमि का शवाल न?

एकुलीना—हाँ। नारा न करे ऐसा हो जाए। हे देवी मैया, ऐसा तो कर ही दो। ज़मीन की हम गरीबों को कैसी तगी है ..और फिर—फिर अब क्या हाल है?

आवारा०—अब! अब तो मैं माश्को में भाग आया हूँ। मजूरों का खून चूशने-वाले किशी मोटे दरवाजे पर पहुँचूँगा—कहूँगा कि मुझे कुछ काम बताओ। क्या करूँ। इशमें नीचा तो देखना ही पड़ेगा,—पर, पेट भी तो भरना है।

एकुलीना—लो, चाय और लोगे क्या ज़रा-सी ?

आवारा०—धन्नवाद !

(बाहर के रास्ते में बात-चीत और शोर-गुल का शब्द ।)

एकुलीना—लो, माइकेल भी आ पहुँचा। अच्छा हुआ चाय के वखत ही आ गया।

मरथा—(उठती हुई) भगवान भला करे। इगनाट साथ में हैं। जरूर पिए हुए हैं।

(माइकेल और इगनाट का लड़खड़ाते हुए प्रवेश।)

इगनाट—क्या कर रहे हो जी तुम सब ? (मूर्ति के सामने सलीम का चिन्ह बनाता है।) देखो जी, आगए न हम भी, ह. हः हः . ऐसी-तैसी तुम सब को . . . लाओ चाय लाओ..... (गाता है।)

हम पहुँचे गिरजा में ज्योंही, सब पूजा खतम हुई त्योंही।
हम खाना खाने पहुँचे, कुछ बचा नहीं था, लौटे।
पर भट्टी पें जाते ही, दारू उड़ी तुरत ही, हः हः ह.

तुम हमें चाय पिलाओ और हम तुम्हें दारू पिलाएँ। मीठे को मीठा और थप्पड़ को थप्पड़, हः हः हः हः . . .

माइकेल—और यह मुष्टंडा कौन है ?—यहाँ क्यों बैठा है ? (आवारागर्द की ओर सकेत करता है। फिर अपनी जेब में से एक बोतल निकाल कर चौकी पर रखता है।) अच्छा ला, थीड़े से कुल्हड़ ला।

एकुलीना—अरे, कुछ गड़बड़ तो नहीं करेगा ?

इगनाट—इससे बढ़िया और क्या बात होगी, तुम्हारी ऐसी-तैसी। कुछ थोड़ी-सी वहाँ पी, कुछ थोड़ी-सी यहाँ ले आए, और खूब मौज उड़ाई इससे बढ़िया और क्या बात होगी। हः ह· ह· ह. .

माइकेल—(कुल्हड़ों को भर कर एक अपनी माता को देता है और एक आवारागर्द को) पीओ—तुम भी पीओ।

आवारा०—दिली धन्नवाद। तुम्हारी तन्दुरुस्ती रहे। (पीकर कुल्हड़ खाली कर देता है।)

इगनाट—वाह बेटा! खूब गटकता है, ऐसी-तैसी उसकी। मैं समझूँ, भूख के कारन यह उसकी नसों-नसों में उतर गई होगी। (और देता है।)

आवारा०—(पीता है) भगवान तुम्हारे शब काम पूरे करें।

एकुलीना—अरे माइकेल, लकड़ियों के कुछ अच्छे दाम मिले, या योंहीं .

इगनाट—अच्छे मिले हों या बुरे, हमने सब उड़ा डाले, तुम्हारी ऐसी-तैसी। क्यों माइकेल, सच्ची बात है न?

माइकेल—सच्ची बेसक सच्ची! ऐसी चीज़ कोई देखने के लिए ही थोड़े-ई बनाई गई है। सौ बरस में एकाद दफे तो कुछ मजा होना चाहिये, यार!

मरथा—झूठ-मूठ की बातें क्यों बना रहे हो? यह कोई अच्छी बात है क्या? घर में खाने के लिए भी पूरा नहीं है और तुम यह सब कर रहे हो।

माइकेल—(डाटने के ढग से) क्या है, मरथा।

मरथा—क्या मरथा! मरथा क्यों होती! तुम्हारे ये काम देख के मेरा जी जले है।

माइकेल—मरथा देख...

मरथा—क्या देखे मरथा! कुछ देखने को भी हो। मैं नहीं देखना चाहती।

माइकेल—दारू उँडेल-उँडेल के मैमानों को दे। समझ गई।

मरथा—ओहो-ओ! सराब उँडेल उँडेल के दे! इस तरह क्या देख रहे हो? क्या तुमसे कोई बोल रहा है।

माइकेल—क्या कह रही है ? तू हमसे नहीं बोलेगी ? हाँ, सलगम की जड़, बता तो—तू हमसे नहीं बोलेगी ?

मरथा—(सोते हुए शिशु को थपथपाने लगती है। पराशा डर कर उसके पास आजाती है।) कहती क्या ! यही कहती हूँ कि तुम से बोलता कौन है, बस ..

माइकेल—अच्छा अच्छा, भूल गई तू ! (कूद कर उसके सिर में मारता है और उसकी ओढ़नी खींच लेता है।) देख एक—

मरथा—अरे-रे-ऐ ! (ऊ-ऊ ऊ ! चिल्लाती हुई दरवाजे के पास भाग जाती है।)

माइकेल—भगेगी कहाँ, खसम-करानी ! (उसकी ओर झपटता है।)

आवारा०—(अपनी जगह से उछल कर माइकेल का हाथ पकड़ता है।) तुम्हें कोई हक, नहीं है कि ..

माइकेल—(रुक कर आवारागर्द की ओर आश्चर्य से देखता है।) क्यों, कहीं पिटे हुए भौत दिन होगये हैं क्या ?

आवारा०—तुम्हें इस्त्री के ऊपर कोई ऐसा हक नहीं है कि उशकी बे-आवरूई करो।

माइकेल—तू कुतिया के जने ! तू कौन होता है ? देख, वह हक है ! (घूसा दिखाता है।)

आवारा०—मैं इस्त्रियों की बे-आवरूई होती नहीं देख शकता।

माइकेल—आ तो फिर मैं तुझे ऐसी बे-आवरूई दिखा दूँ कि अपना उल्टा-सीधा भूल जायगा

आवारा०—हाँ दिखाओ। (उसकी गर्दन पकड़ कर दबाता है।) दिखाओ, दिखाओ। दिखाते क्यों नहीं ?

माइकेल—(सकपकाता है और अपने हाथ फैला देता है) और जो मैं तेरी रपोट करा दूँ तो ?

आवारा—मैं कहता हूँ, दिखाओ न।

माइकेल—तुम तो बड़े भले आदमी हो जी। अब मेरी समझ में आया। अच्छा लो, छोड़ो। (अपने हाथ गिरा देता है। आवारागर्द उसे छोड़ता है। माइकेल सिर हिलाता है।)

इगनाट—(आवारागर्द से) औरतों पे तुम बड़े मेहरबान मालूम होओ हो जी, तुम्हारी ऐसी-तैसी।

आवारा०—मैं उनके हक्कों के लिए लड़ता हूँ।

माइकेल—(हाँपता हुआ चौकी के पास आकर मरथा से) जा अपने देवताओं को सुकर भेज कि आज इन्होंने तुझे बचा लिया नहीं तो आज तुझे ठोक-ठोक के आचार बना डालता।

मरथा—तुम से और आसा ही काहे की है। जिन्दगी भर हम मरें-पच, आटा मलें, रोटी बनाएँ और...

माइकेल—अच्छा, बस-बस। हो चुका अब। (अनाथ को शराब देता हुआ) लो पिओ। (मरथा से) अब तू टें-टें काहे को कर रही है? क्या कोई जरा-सी हँसी दिल्लगी भी नहीं करे? ले (रुपया देता है) रख दे इसे। तीन रुपये हैं ओर थोड़े से पैसे हैं।

मरथा—और चाय और बूरे को जो तुम से कहा था?

माइकेल—(अपनी जेब से चाय और बूरे की पुड़िया निकाल कर मरथा को देता है। मरथा रुपया और पुड़िया सभालती हुई कोठरी में चली जाती है।) ये औरतें भी कैसी बेवकूफ होती हैं। (आवारागर्द को फिर दारू देता है।) और लो।

आवारा०—अब तुम्हीं पिओ।

माइकेल—नखरे की जरूरत नहीं है। लो इसे।

आवारा०—(पीता हुआ) भगवान तुम्हारा भला करे।

इगनाट—(आवारा से) तुमने भौत-सी अजीब-अजीब जगहें देखी हैं, मालूम होवे हैं। और तुम्हारा यह कोट कैसा बढ़िया है, बिलकुल नई किसम

का। इसे कहाँ से उड़ाया तुमने ? (उसकी फटी हुई बन्डी की ओर संकेत करता है।) इसे सभलवाना मत, मैं कहता हूँ। यह ऐसेही अच्छा लगता है। इसकी उमर बढ़ रही है।. और इलाज भी क्या है ? जो मेरे पास ऐसा कोट होता तो मुझे भी औरतें चाहने लगतीं। (मरथा की तरफ देख कर) सच्च है न ?

एकुलीना– इगनाट, वकवाद क्यों करते हो ? किसी आदमी की कोई बात देखे बगैर उसकी हँसी उड़ाना अच्छा नहीं है।

आवारा०—यह इनकी आशीक्शा का प्रणाम है, जी। इनका दोश नहीं।

इगनाट—मैं तो दोस्ताने में कह रहा हूँ। लो और पिओ। (शराब देता है।)

एकुलीना—ये खुद कहते हैं कि यह दारू ही सब सराबियों की जड़ है, फिर क्यों देते हो ? इसी के लिए इन्हें जेल भी जाना पड़ा था।)

माइकेल– जेल क्यों जाना पड़ा था ?

आवारा०— जबरदस्ती करने की वजे से।

माइकेल– सो क्यों ?

आवारा०—सो यों कि एक मोटे आशामी के पास पहुंचे और बोले—"जो कुछ तेरे पास हो सो धर दे, नहीं तो देख यह पिस्तौल है।" वह पहिले तो इधर-उधर करता है, फिर चुपके से २४०० रुपये निकाल कर धर देता है।

एकुलीना—ओ राम !

आवारा०—हम उस रुपये को ठिकाने लगाने की फिकर में थे ही। जेम्बरीको हमारा शरदार था। पर इसी बीच में पुलिश के कौवों का झुंड का झुंड हमारे ऊपर टूट पड़ा और हमें सब को हिरासत में करके जेल में पटक दिया।

इगनाट—और वह रुपया भी ले गया ?

आवारा०—और क्या। पर वे मुझ पे कोई अपराध नहीं लगा शके। शरकारी वकील ने मुझशे पूछा, 'तुमने चोरी की है' और मैंने शाफ कह दिहा, 'नहीं। चोरी चोर करते हैं परन्तु मैंने जबर-दश्ती की है, अपनी पाल्टी के लिए।' यह शुनकर वह ऐशा हक्का-बक्का हुआ कि कुछ कही नहीं शका! इधर-उधर तो वहुत की पर उश्शे कुछ जवाब ही नहीं वन पड़ा। हार के यही बोला कि 'इन्हें जेलखाने ले जाओ'—याने मेरी आजादगी की पावन्दी कर दी।

इगनाट—शब्बास कुत्ते। खूब चलाकी दिखाई। (शराव देता हुआ) लो और पीओ और पीओ, कुत्ती-पूत।

एकुलीना—हरे राम! कैसी जवान है तुम्हारी!

इगनाट—मेरी? नहीं अम्मा, मैं इनकी मा को थोड़े ई कह रहा हूँ। मेरी बोल-चाल ही ऐसी है, इसकी ऐसी-तैसी.. तुम्हारी तन्दुरुस्ती वनी रहे दादी-ई....

(मरथा चाय लाकर उँडेलने लगती है)

माइकेल—हाँ, अव ठीक है। बुरा तो नहीं मानी न ? देख, मैं कहता हूँ इन्हें सुकर भेज! ..(आवारा० से) तुम्हारा क्या खियाल है जी ? (मरथा का आलिंगन करता हुआ) मैं अपनी जोरू को खूब चाहू हूँ। देखो, कैसा चाहू हूँ। अव्वल लम्वर है यह। मैं इसे किसी के साथ नहीं वदल सकता।

इगनाट—चलो, अच्छा हुआ। लो, वूढी अम्मा, तुम भी पियो इस सुलह की खुशी में।

आवारा०—इशका मतलव है जोवन-शक्ती। अभी एक मनुश उदाश और झुँझलाया हुआ दीखता था। वही अव आनन्द और प्रेम दिखा रहा

है। बूढ़ी दादी, मैं भी तुम्हें प्रेम करता हूँ और हर किशी को प्रेम करता हूँ। प्यारे भाइयो . (आतकवादियों का गीत गाता है।)

माइकेल—इसे तो चढ गई अब पूरी तरह से। भूख में चढ़ेई जादे है।

दूसरा अङ्क

वही झोपड़ी—सुबह का समय—मरथा और एकुलीना—

माइकेल—सो रहा है।

मरथा—(कुल्हाड़ी लेकर) जाऊँ, थोड़ी-सी लकड़ी चीर लाऊँ।

एकुलीना—(बालटी उठाती हुई) कल तो, बहू, वह तेरी मारते-मारते बुरी हालियत कर देता। पर उस मरद ने तुझे बचा लिया। इस बखत दिखाई नहीं देता वह। कहीं चला गया है क्या? चलाई गया दीखे है। (एक के बाद एक, दोनों जाती हैं।)

माइकेल—(जाग कर चारपाई से उतरता हुआ) अरे, भौत दिन निकल आया। सूरज कितना चढ गया। (जूता पहनता है।) वह तो मा के साथ पानी भरने गई होगी। ओ·हो-ओ, सिर में बड़ा दरद हो रहा है। अब कभी नहीं पिऊँगा। (मूर्ति के सामने जाकर हाथ जोड़ता है और प्रार्थना करता है। फिर हाथ-मुँह धोता है।)

(मरथा लकड़ी लेकर आती है।)

मरथा—वह कलवाला मँगता गया क्या?

माइकेल—गया-ई होगा। दीखता तो नहीं।

मरथा—अच्छा हुआ, गया तो। बड़ा चालाक मालुम होवे था।

माइकेल—तेरी तो तरपदारीई करी थी।

मरथा—सो ? (माइकेल अपना कोट पहनता है ।)

और वह चाय और बूरा ? तुमने कहीं रख दिया है क्या ?

माइकेल—मैंने तो तुम्हे-ई दिया था ।

(एकुलीना बालटी भर-कर लाती है ।)

मरथा—(एकुलीना से) चाय-बूरा तुमने कहीं रख दिया है क्या ?

एकुलीना—मैं क्यों कहीं रखती । मैंने तो उसे देखा भी नहीं ।

मरथा—रात में मैंने पुड़िया को ताख में रख दिया था ।

एकुलीना—हाँ हाँ, व्हईं रक्खा था ! मुझे याद आ गई ।

मरथा—तो गया कहाँ फिर ? (सब इधर-उधर ढूँढ़ते हैं ।)

एकुलीना—हरे राम ! यह तो बड़ा अचरज हुआ ।

(पड़ोसी का प्रवेश ।)

पड़ोसी—अजी ओ माइकेल, राम राम ! जंगल को नहीं चलोगे क्या ?

माइकेल—चलूँगा क्यों नहीं ? अभी तैयार होऊँ हूँ । पर देखो तो, हम लोगों की कोई चीज खो गई है ।

पड़ोसी—चीज खो गई है ? अरे ! क्या चीज थी ?

मरथा—अजी कल ये बजार से चाय-बूरे की पुड़िया बँधवा के लाये थे । सो मैंने ह्याँ ताख में रख दी थी । पर अब देखो तो उसका पता-ई नहीं है ।

माइकेल—और हम यह पाप कर रहे हैं कि एक उचक्के पर सुभा करे हैं जो रात में हमारे ह्याँ सोया था ।

पड़ोसी—कैसा था वह उचक्का ?

मरथा—कुछ-कुछ दुबला-सा । दाढ़ी-मूँछें सफा थीं ।

माइकेल—और उसका कोट सब तरप से फट रहा है ।

पड़ोसी—घुँघराले बाल और मुड़ी हुई नाक भी है क्या ?

माइकेल—हाँ हाँ।

पड़ोसी—मैंने तो उसे अभी देखा है। मुझे ताज्जुब हो रहा था कि वह इतनी जल्दी-जल्दी क्यों जा रहा है।

माइकेल—हाँ तो, वही होगा, वही होगा। कहाँ था वह ?

पड़ोसी—अभी पुल के पार तो नहीं पहुँचा होगा।

माइकेल—(झटपट अपनी टोपी उठा कर बाहर जाता है। पड़ोसी पीछे-पीछे झपटता है।) मैं अभी उस बदमास को पकड़ के लाता हूँ। उसीने चुराया है। उसी ने ..

मरथा—हे भगवान् ! ऐसे भी लोग होवे हैं, ऐसे भी लोग होवे हैं। उसी ने चुराया है....

एकुलीना—और जो, मान लो, उसने ना चुराया होवे तो। बीस बरस हुए, एक दफे ऐसा हुआ था। लोगों ने एक आदमी को घोड़े की चोरी के सुभे में पकड़ लिया। निरी भीड़ इकट्ठी हो गई। कोई कुछ कहे, कोई कुछ कहे ! एक ने कहा —"मैंने इस सकस को घोड़ा पकड़ते हुए देखा था।" दूसरा बोला —'मैंने उसे घोड़े को ले जाते हुए देखा था।" सब लोग जगल में घोड़े को ढूँढने को गए और वहाँ उन्हें कोई सकस मिल गया। फिर क्या था ! सब के सब उस पर टूट पड़े—तैने-ई घोड़ा चुराया है, तैने-ई घोड़ा चुराया है।" वह कुछ कहे तो सुनें नहीं और कहें—"इसे बकने दो, इसे बकने दो। लुगाइयाँ कह रही हैं कि इसी ने चुराया है।" तब उसने भी गुस्से में कुछ कहा। तो जार्ज ने उसके मुँह पे एक थप्पड़ मारा और घूँसा जमाया। यह देख के और सब लोग भी उस पर टूट पड़े और उसे खूब पीटा, और उसे मार डाला। और फिर, मालुम है, क्या हुआ ? अगले-ई दिन असल चोर पकड़ा गया। वह आदमी तो जगल में वैसे-ई लकड़ी बीनने चला गया था।

मरथा--अब, क्या जाने ! सायद हमारा सुभा झूँठा ही हो। वैसे तौ इतना बुरा आदमी नहीं दीखे है। उसके दिन खराब हो गए हैं।

एकुलीना--हाँ, ये तो है है-ई। और चलन में भी गिर गया। ऐसे आदमी अच्छे कम होते हैं।

मरथा—बाहर लोग तो चिल्ला रहे हैं। पकड़ लाए क्या उसे ?

(माइकेल, पड़ोसी, एक बुड्ढे आदमी तथा एक नवयुवक का आवारागर्द को ढकेल कर लाते हुए प्रवेश।)

माइकेल—(पुड़िया को अपने हाथ में लिए हुए, जल्दी-जल्दी मरथा से) इसी के पास मिली, इसी के पास मिली। (आवारागर्द से) क्यों रे चोर कुत्ते !

एकुलीना—ओ-हो, तो ये-ई निकला ! विचारे ने कैसे सिर झुका रक्खा है।

मरथा—मैं जानूँ थी कल यह अपनी-ई बात कह रहा था कि सराब पीके जो कुछ सामने आए उसे-ई हथिया ले है।

आवारा०—देखो जी, मैं चोर नहीं हूँ। मैं छीन के लेता हूँ। मैं काम करता हूँ और मुझे भी जीकर रहना है। तुम क्या शमझो। तुम्हें जो कुछ करना हो शो करो।

पड़ोसी—इसे मुखिया के पास ले जाओ • और नहीं तो पुलिस में ले चलो .....

आवारा०—मैं कहता तो हूँ कि जो चाहो शो करो। मैं डरता नहीं हूँ और अपने काम का प्रणाम भुगतने को तैयार हूँ। तुम लोग क्या शमझो। कुछ पढे लिखे होते तो शमझते।

मरथा—(माइकेल से) क्यों जी, भगवान के ऊपर छोड़ के इसे जाने-ई दो ना। हमारी पुड़िया तो मिल ही गई। अब इसे जाने दो। हम क्यों पाप करें।

माइकेल—पाप करें! मुझे धरम सिखा रही है। तेरे बोले बगैर क्या किसी का काम नहीं चलता।

मरथा—तो चला-ई क्यों नहीं जाने देते?

माइकेल—चला-ही क्यों नहीं जाने देते! तू नहीं ही बोलेगी तो क्या होगा? चलाही क्यों नहीं जाने देते! चला तो वह जाएगा ही। पर उसे एक-दो सीख की बात भी तो बता दूँ। (आवारागर्द से) अच्छा तो, सुनो साब, सुनो हजूर, मैं क्या कहता हूँ। तुम्हारी हालियत इस बखत खराब है, पर फिर भी तुमने बड़ा बुरा काम करा है। भौत-ई बुरा काम करा है। कोई और सकस होता तो तुम्हारी पसलियें तोड़ देता और तुम्हें पुलिस में ले जाता। पर मैं तुम से बस इतना कहता हूँ—तुमने बड़ा बुरा काम करा है—बड़ा ई बुरा काम करा है। तुम्हारी इस बखत हालियत खराब है, इस मारे मैं तुम्हें कोई नुकसान नहीं पौहचाना चहाता। (चुप होजाता है। और सब भी चुप हैं। फिर बड़ी गम्भीरता से कहना आरभ करता है।) तुम जा सकते हो। भगवान तुम्हारा भला करे। अब आगे ऐसा मत करना। (अपनी पत्नी की ओर देख कर) और क्यों, तू मुझे धरम सिखा रही थी।!

पड़ोसी—अरे नहीं, माइकेल। इसे छोड़ क्यों रहे हो, इसे छोड़ क्यों रहे हो! इससे तो यह और जादे चोरी करना सीखेगा।

माइकेल—(पुड़िया को हाथ में लिये हुए) मैं इसे छोड़ूँ या नहीं छोड़ू, यह मेरा काम है। तुम्हें क्या मतलब? (अपनी पत्नी से) और तू मुझे धरम सिखाती थी! (ठहर कर एक बार पुड़िया की ओर देखता है, फिर अपनी पत्नी की ओर और पुन आवारा की ओर। अन्त में निश्चय के साथ पुड़िया आवारागर्द को देता हुआ) लो, ले जाओ इसे। रस्ते में तुम्हारे काम आएगी। (अपनी पत्नी से) और तू समझती थी कि तू मुझे धरम सिखाएगी! (आवारागर्द से जाओ अब, तुम से कह दिया। बस जाओ, सोच-विचार की जरूरत नहीं।

आवारा०—(पुड़िया लेकर कुछ देर चुप रहता है।) तुम शोचते होगे मैं कुछ शमझता नहीं। (, उसकी आवाज़ काँपती है।) मैं अच्छी तरह

शमझता हूँ । अगर तुमने मुझे कुत्ते की तरह पीटा होता तो सहना इतना कठिन नहीं था। क्या मैं नहीं देखता कि मैं कितना नीच हूँ । मैं कमीना हूँ, पापी हूँ, बहुत बुरा हूँ । भगवान के नाम पर मुझे छमा करो । (सिसक कर रोने लगता है और पुड़िया को चारपाई पर फेंक कर जल्दी से बाहर निकल जाता है ।)

मरथा—चलो, अच्छा हुआ कि चाय-चूरा नहीं ले गया। नहीं तो आज कुछ पीने ई-को नहीं मिलता ।

माइकेल—अरे ! व-अग ! और तू तो मुझे धरम सिखा रही थी !

पड़ोसी—आहा ! विचारा कैसा रोता था ।

एकुलीना—भगवान ने उसे भी आदमी ही बनाया है ।

रूपक के पात्र

एक किसान

किसान की पत्नी

किसान की माता

किसान का दादा

किसान की छोटी लड़की

एक पड़ोसी

गाँव के चार प्रधान—पंच

स्त्रियाँ, वृद्धाएँ, लड़कियाँ और बालक

शैतानों का सरदार

सरदार का मुंशी

पिशाचों का जमादार

प्रहरी और ड्योढ़ीवान

अन्य पिशाच

प्रथम मुलाकात

[१]

किसान—(हल जोतते-जोतते आकाश की तरफ देख कर) दोपहर हो गया। बैलों के जोत खोलने का वक्त आ गया। ही: चल, चल। थक गए बेचारे बैल भी। बस एक चक्कर और, फिर इसके बाद खाना-वाना खाऊँगा। मैंने अच्छा ही किया जो एक रोटी बाँधता लाया। अब घर जाकर क्या करूँगा ? यहीं कुएँ पर बैठ कर टुकड़ा कुतुर लूँगा और ज़रा देर आराम कर लूँगा। बैल इतने घास चरते रहेंगे। (जमुहाई लेता है।) ईश्वर, तेरी माया। (पिशाच आकर एक झाड़ी के नीचे छिप जाता है)

पिशाच—देखा, कैसा भला आदमी बना है। हर वक्त "ईश्वर, ईश्वर" ही पुकारता रहता है। अच्छा दोस्त, ठहरो ज़रा। अभी थोड़ी ही देर में तुम शैतान को याद न करने लगो तो बात ही क्या। मैं इसकी रोटी छिपाए लेता हूँ। फिर जब यह उसे लेने आएगा और जगह पर न पा कर इधर-उधर ढूंढेगा और पेट में बिल्लियाँ कूदेंगी तो बच्चा अपने आप खीझेंगे और गालियाँ बकेंगे। फिर तो शैतान ही याद आएगा। (रोटी उठाकर फिर झाड़ी के पीछे बैठ जाता है और किसान की कार्रवाई देखता है।)

किसान—(बैल खोलता हुआ) सीताराम ! राधेश्याम ! शुक्र है परमात्मा का ! (बैल को खोल कर उस तरफ जाता है जहाँ उसकी बण्डी रक्खी है।) बड़ी भूख लगी है। रोटी भी उसने खूब ही मोटी बना के दी थी, पर देखना जो मैं उसमें से जरा सी भी छोड़ूँ तो ! (बडी के पास पहुँच कर) अरे, यह क्या ! रोटी का तो पता भी नहीं। कहाँ छू-मन्तर हो गई ? (बडी को अच्छी तरह झाड़ कर देखता है।)

पिशाच—बहुत ठीक, बेटा ! ढूँढो, खूब ढूँढो। मैंने उसे अच्छी तरह सँभाल कर रख दिया है। (रोटी के ऊपर बैठ जाता है।)

किसान—(हल हटाकर फिर अपनी बडी झाड़ता है) यह तो बड़े अचरज की बात है। बडे भारी अचरज की! यहाँ चिड़िया तक तो कोई आई नहीं और रोटी गायब हो गई! और जो चिड़ियों ने ही खाई होती तो उसके कुछ टुकड़े तो होते। पर यहाँ तो एक कन भी नहीं। यहाँ कोई भी नहीं आया और फिर भी रोटी को कोई लेगया।

पिशाच—हाँ हाँ, बस! अभी करोगे तुम शैतान को याद, बच्चू! (उठकर देखता है।)

किसान—खैर, कोई ले गया सो ले गया। अब कर ही क्या सकूँ हूँ! जैसी मर्जी परमात्मा की। कोई भूख से मर तो जाऊँगा ही नहीं! जो ले गया है उसी का भला हो।

पिशाच—(गुस्से से थूकता है।) धत्तेरी निकम्मे किसान की! अब भी परमात्मा को ही याद करता है! गालियाँ देने की जगह कहता है कि जो ले गया है उसका भला हो! भला ऐसे आदमी के साथ कोई क्या कर सकता है?

(किसान ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ लेट जाता है और जमुहाई लेकर सो जाता है।)

पिशाच - (झाड़ी से निकल कर) मोटे आदमियों के लिए बातें मारना बड़ा आसान है। सरदार बराबर कहते रहते हैं—"तुम काफी किसान नरक में नहीं लाते। हर रोज कितने बनिये-व्यवसायी, कितने भले आदमी और दूसरे पेशों के लोग यहाँ गिरते रहते हैं, पर किसान बहुत ही कम आते हैं।" अब भला इस आदमी को किस तरह ढग पर लाया जाए? उसे काबू मे करने का कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता। क्या अभी-अभी मैंने उसकी तमाम रोटी नहीं चुरा के रखली? इससे ज्यादा और मैं करता ही क्या? फिर भी यह गालियाँ नहीं बकता, क़समें नहीं खाता। मैं तो परेशान हूँ कि क्या करूँ। जो कुछ हाल है सो सरदार से जाकर कहे देता हूँ। (भूमि के भीतर घुस कर अदृष्ट हो जाता है।)

स्थान नरक। शैतानों का सरदार सब से ऊँचे स्थान पर आसीन है। उसका मुंशी ज़रा नीची जगह पर अपने सामने एक मेज़ और लिखने का सामान रक्खे हुए बैठा है। हर तरफ़ पहरेदार मौजूद हैं। दाहनी ओर भिन्न-भिन्न सूरतों वाले पाँच पिशाच खड़े हैं। बाईं तरफ़ दरवाजे के पास ड्योढ़ीवान है। पिशाचों का जमादार सरदार के सामने खड़ा है।

जमादार—इन तीन साल की तमाम लूट में २२०००५ आदमी आए हैं। वे इस समय मेरे अधिकार में हैं।

सरदार—यह तादाद बुरी नहीं है। अच्छा, जाओ।

(जमादार दाहनी ओर चला जाता है।)

सरदार—मुंशी जी, क्या अभी बहुत काम बाकी रहगया है? हम तो बिलकुल थक गए। कौन-कौन अपनी कैफियत बयान कर चुके और कौन-कौन बाकी रहे हैं?

मुंशी—(उँगलियों पर गिन कर बतलाता है और दाहनी ओर खड़े हुए लोगों की ओर क्रम-क्रम से संकेत करता जाता है। मुंशी के बताने पर पिशाच बारी-बारी से झुक कर सलाम करते हैं।) भले आदमियों के पिशाच की कैफियत हो चुकी। इसने कुल १८३६ भले आदमी फँसाए हैं। तिजारतियों के पिशाच की कैफियत में ९६४३ मनुष्य हैं। दफ्तरों के कर्मचारियों में से ३४२३ फँसे हैं। उनके पिशाच की कैफियत अभी समाप्त हुई है। स्त्रियों का पिशाच भी अभी अपनी कैफियत देकर गया है। १८६३१५ विवाहित स्त्रियाँ और १७४३८ कुमारियाँ आई हैं। अब केवल दो पिशाच रहे हैं—वकीलोंवाला और किसानोंवाला। कुल सूची में २२०००५ आदमी हैं।

सरदार—अच्छा तो, इस तमाम काम को आज समाप्त कर दिया जाए, (ड्योढ़ीवान से) आने दो ।

(वकीलोंवाला पिशाच आता है और सरदारों को सेलाम करता है)

सरदार—हाँ, कहो, तुम्हारा काम कैसा रहा ?

वकीलोंवाला पिशाच—(हँसता हुआ और हाथों को रगड़ कर) मेरे काम सभी सधते, कज्जल से सुफेद रहते । मेरी लूटनी ऐसे ज़ोर की है कि जब दुनिया बनी तब से अभी तक मुझे किसी भी ऐसी बात की याद नहीं जिसमें इतनी कामयाबी हुई हो ।

सरदार—क्यों, तुम्हारी लूट की तादाद कितनी है ? कितने आदमी गिरफ्तार हुए हैं ?

व० पि०—नहीं, तादाद तो ऐसी बहुत नहीं है—सिर्फ १३५० आदमी हैं । लेकिन वे ऐसे लोग हैं कि, वाह ! खुद शैतान भी उनसे शरमा जाए । वे हमसे भी ज्यादा खूबी के साथ आदमियों को फँसा सकते हैं ! मैंने उनमें एक नया रिवाज जारी किया है ।

सरदार—वह क्या है ? कहो ।

व० पि०—देखो, पहले तो वकील जजों के सामने रहा करते थे और वहीं लोगों को धोखा दिया करते थे । अब मैंने जजों से अलग बाहर भी उनके काम करने का इन्तजाम कर दिया है । जो कोई उन्हें सब से ज्यादा रुपया देता है उसी के लिए वे पैरवी करते हैं और उसके लिए इतनी मेहनत करते हैं कि कोई मामला न होने पर भी वे एक-न-एक मामला गढ़ ही लेते हैं । अदालत के कारिन्दों से मिल कर लोगों को वे हम से भी ज्यादा होशियारी से फँसाते हैं ।

सरदार—बहुत ठीक । मैं उनको खुद देखूँगा । तुम जा सकते हो ।

(वकीलों वाला पिशाच दाहनी ओर चला जाता है ।)

सरदार—(ड्योढ़ीवान से) आखिरी पिशाच को आने दो ।

(किसानों वाला पिशाच हाथ में रोटी लिए हुए प्रवेश करता है और जमीन तक झुक कर सलाम करता है।)

कि० पि०—मैं अब इस जगह काम नहीं कर सकता। मुझे कोई दूसरा काम दिया जाए।

सरदार—कौन-सा दूसरा काम ? क्या बड़बड़ करता है ? उठ कर होश की बातें कर और अपनी कैफियत सुना। कितने किसान इस हफ्ते में फँसाए ?

कि० पि०—कितने बताऊँ ! एक भी किसान हाथ नहीं आया।

सरदार—क्या ? एक भी नहीं ! क्या कह रहा है तू ! फिर करता क्या रहा ? इतने दिन कहाँ सुस्ती की ?

कि० पि०—(भिनभिनाता हुआ-सा) मैंने सुस्ती नहीं की। मैंने अपनी एक-एक नस का जोर कोशिश में लगा दिया। पर अब मैं कुछ नहीं कर सकता। देखते नहीं, मैंने जाकर उसकी आँखों के सामने से उसकी तमाम रोटी चुरा ली और वह मुझे गाली देने के बजाए कहने लगा कि लेजाने वाले का ही भला हो।

सरदार—क्या ..क्या ..क्या भिनभिना रहा है ? जाकर नाक साफ कर और फिर होश में आकर हाल कह। तेरी बात का सिर-पैर तक तो समझ मे आता ही नहीं।

कि० पि०—क्यों, सुनो न-एक किसान हल जोत रहा था। वह एक ही रोटी लाया था और उसके पास खाने को और कुछ नहीं था। मैंने उसकी रोटी चुरा ली। कायदे से उसे मुझको गाली देनी चाहिए थी। पर उसने ऐसा नहीं किया। वह कहने लगा, "लेजानेवाले का उसे खाकर भला हो।" मैं अपने साथ वह रोटी भी लेता आया हूँ। यह देखो।

सरदार—अच्छा, और बाकी किसानों के बारे में क्या बात है ?

कि० पि०—वे सब एक से हैं। मैं किसी को भी नहीं फँसा सका।

सरदार—तो तुझे खाली हाथ हमारे सामने आने की हिम्मत ही कैसे हुई ? और, गोया कि इतना ही कुसूर काफी नहीं था, इसलिए तू अपने साथ यह सड़ा हुआ बदबूदार टुकड़ा भी उठाता लाया। क्या तू हमारा मज़ाक बनाना चाहता है ? तू चाहता है कि नरक मे रह कर मुफ्त की रोटी खाता रहूँ। दूसरे लोग खूब कोशिश करते हैं और जी-तोड़ मेहनत करते हैं। इनमे से (पिशाचों की ओर सँकेत करके) हर एक ने—किसी ने १००००, किसी ने २००००, और किसी ने २००.०० तक आदमी दिए हैं। और एक तू है जो खाली हाथ आकर अपना राग गा रहा है। बातें बनाता है पर काम नहीं किया जाता। अच्छा ठहर ज़रा, मैं तुझे दो एक सबक पढ़ा दूँ।

कि० पि०—लेकिन मुझे सज़ा देने से पहिले एक बात सुन लो। इन पिशाचों का काम तो बड़ा आसान है जिन्हें भले आदमियों, सौदागरों या औरतों से भुगतना पड़ता है। इनका बड़ा सीधा रास्ता है। एक भले आदमी को कोई खिताब या जागीर दिखाओ और वह तुम्हारे इशारे पर नाचने लगेगा। एसे ही सौदागर की भी बात है। ज़रा-सा रुपया दिखा कर उसका लालच उभार दो और उसकी नाक पकड़ कर हाँक लो। वही हाल औरतों का भी है। उन्हे बढिया-बढ़िया चीजें दो, मिठाइयाँ खिलाओ और उनके साथ जो चाहो सो करलो। पर ये किसान! इन्हें तो अपने हल और बैलों से ही फुरसत नहीं है। जब कि वह सुबह से लेकर शाम तक—कभी-कभी तो रात तक—बराबर मेहनत करता रहता है और अपने ईश्वर का नाम लिए बिना कभी कोई काम ही नहीं करता, तो कोई किस तरह उसे काबू में लाए! सरदार, मुझे इन किसानों के झगड़े से छुट्टी दो। इसकी वजह से मैं परेशान होते होते मर तक तो गया, पर बदले में मिला तुम्हारा गुस्सा।

सरदार—चालाकी की बातें करता है, सुस्त कहीं का। तुझे दूसरों की बातों से मतलब क्या ? अगर ये सौदागरों, भले आदमियों और औरतों को फँसा सके तो सिर्फ इसी वजह से कि ये उनको पटाना जानते थे और उनके लिए नए-नए जाल रच सकते थे। वकीलोंवाले ने तो एक बिलकुल ही नया तरीका निकाला है। तुझे भी इसी तरह कोई तरकीब सोचनी पड़ेगी। तू

एक टुकड़ा चुरा लाया है और उसी पर शेखी बघार रहा है, मानो कोई बड़ा भारी काम किया है। देखो, उन किसानों को चारों तरफ नए-नए फंदों से घेर दो। फिर वे किसी न, किसी में फँस ही जाएँगे। तुम्हारे इस तरह सुस्ती से घूमते रहने और उनको अपने काम में खुदमुख्तार रहने देने से ही तो वे जबर्दस्त होगए हैं। अब वे अपने आखिरी बचे हुए टुकड़े को भी परवाह नहीं करते। अगर वे इसी तरह करने लगेंगे और अपनी औरतों को भी यही सिखाएँगे तो हमारे काबू से बिलकुल निकल जाएँगे। कोई बात जल्द सोच कर निकालो। जैसे हो वैसे अपना चलन बदलो और ठीक ठीक काम करो।

कि० पि०—मेरी समझ में तो नहीं आता कि मैं किस तरह उस काम को करूँ। मुझे अब जाने दो। मुझसे यह काम नहीं हो सकता।

सरदार—काम नहीं हो सकता! तो तू यह समझता है क्या, कि तेरा काम हम करेंगे?

कि० पि०—किसी और को देदो। पर मेरी ताकत के तो बाहर है यह काम।

सरदार—अच्छा, ठहर फिर! पहरेदार, बेत ला। इसके कोड़े तो लगा।

(पहरेदार पिशाच को पकड़ कर उसके कोड़े लगाता है।)

कि० पि०—ओह, ओह! मरा! मरा!

सरदार—क्यों, आई कोई तरकीब समझ में या अभी नहीं?

कि० पि०—ओह, मरा! मुझसे नहीं सोची जाती। नहीं सोची जाती।

सरदार—मारो और मारो। (पहरेदार खूब मारते हैं।) क्यों, सोची तरकीब?

कि० पि०—हाँ, हाँ, सोचता हूँ—ठहरो, जरा दम लेने दो। (सरदार के इशारे से पहरेदार मारना बन्द कर देते हैं) ओफ्। मर गया। आह।

सरदार—बतलाता है क्या तरकीब सोची या अभी और कोड़े खाएगा?

कि० पि०—मैंने एक बड़ी चालाकी की बात सोची है, सरदार, जिससे वे सब अब मेरे बस में आ जाएँगे। बस, अब मैं उस किसान के यहाँ मज़दूर बन कर काम करूँगा। फिर देखूँ, कैसे बचता है। लेकिन मैं पहले ही से अपनी तरकीब तुम्हें नहीं बताऊँगा।

सरदार—अच्छा खैर, न सही। मगर याद रख, अगर तीन साल के भीतर तूने इस गन्दे टुकड़े का एवज न चुकाया तो मैं तुझे जिन्दा खाल के अन्दर सिलवा दूँगा।

कि० पि०—तुम यकीन रक्खो। तीन साल में वे सब मेरे गुलाम हो जाएँगे।

सरदार—अच्छी बात है। तीन साल बीतने पर मैं खुद आऊँगा और देखूँगा।

[३]

खलिहान—गाड़ियाँ नाज से भरी हैं—मज़दूर के वेश में पिशाच गाड़ी से नाज उतार रहा है और किसान उसे तोल-तोल कर घर में ले जा रहा है।

मज़दूर—तेंतीस।

किसान—कितने मन हुए।

मज़दूर—(खलिहान के द्वार पर बनाए हुए कुछ चिन्हों को देख कर) ८३२ मन गए। नौवें सैंकड़े का यह तेंतीसवाँ मन है।

किसान—सब नाज भीतर नहीं रक्खा जा सकता। खलिहान भरने पे आ गया है।

मजदूर—नाज को इकसार करके अच्छी तरह दबा-दबा कर रक्खो।

किसान—अच्छी बात है। तेरा ही कहना करूँगा। (तुला हुआ नाज लेकर जाता है।)

मज़दूर—(एकान्त देख कर अपनी टोपी उतारता है। उसके सींग दिखाई देते हैं।) अब तो वह कुछ देर में ही लौटेगा। इतने में अपने

सींगों को ही ठीक कर लूँ। (सींग बढ़ जाते हे।) और ज़रा जूते भी खोल डालूँ। उसके सामने तो मैं ऐसा कर ही नहीं पाता हूँ। (जूते निकालता है और उसके खुर दिखाई देते हैं। चौखट पर बैठ जाता है।) यह तीसरा साल है। शुमारी का वक्त भी क़रीब है। न ज इतना हुआ है कि उसके रखने तक की जगह नहीं है। अब उसे सिर्फ एक बात और सिखानी रह गई है। फिर सरदार आकर स्वय देख जाए। मेरे पास उसको दिखाने लायक़ वाकई कोई चीज होगी। वह मुझे उस टुकड़े की बात के लिए माफ कर देगा।

(पड़ोसी आता है—मजदूर अपने सींग और खुर छिपा लेता है।)

पड़ोसी—भैया, राम राम !

मज़दूर—राम राम, भाई।

पड़ोसी—मालिक कहाँ है ?

मज़दूर—वह नाज को इकसार करने गए हैं। वैसे तो यह सब का सब भीतर नहीं रक्खा जा सकता।

पड़ोसी—सच है, भैया ! तुम्हारे मालिक का भी कैसा भाग जागा है। रखने तक की भी जगह नहीं है। इन दो सालों मे तुम्हारे मालिक की जैसी फसलें हुई हैं उन्हें देखके हर किसी को अचरज होता है। जैसे किसी ने पहले से उसे बता दिया हो कि क्या होगा। पिछला साल सूखा रहा तो उसने दलदल में ही बो दिया। दूसरे लोगों के यहाँ ज़रा भी फसल नहीं हुई, पर तुम्हारी ओखलिएँ सदा नाज की बालों से घिरी रहती थीं। और अबके—अबके तो गरमियों में ही मेंह बरस गया। सब का नाज तो सड़ गया पर उसे अकिल समाई तो जाके टीले के ऊपर बो आया और उसकी खूब अच्छी फसल हुई। कैसा नाज है ! देखो तो जैसे मोती धरे हों।

(कुछ दाने उठा कर उन्हे तोलता है और चबाता है।)

किसान—(खाली डलिया लिए हुए आता है।) ओहो, पड़ोसी आए हैं। कहो, अच्छे तो हो ?

पड़ोसी—हाँ भैया, राम राम। मैं तुम्हारे आदमी से जिकर कर रहा था कि तुमने बोने के लिए अपनी अकिल से कैसी अच्छी जगह ढूँढ़ निकाली हर कोई तुमसे इरखा करता है। कैसे ढेर हैं—कैसे ढेर हैं नाज के तुम्हारे! दस बरस में भी नहीं खा सकोगे इन्हें।

किसान—इसका तमाम जस इसी नजान (मज़दूर की ओर सकेत करता है) को है। यह सब इसी का भाग है। परसाल मैंने इसे हल चलाने को भेजा, और यह हल लेके गया कहाँ ?—दलदल में। मैंने इसे तिकतिकाया, बुरा-भला कहा, पर यह वहीं बोने के लिए मुझसे हठ करता रहा। खैर, मैंने इसी का कहना करा, और उसका फल देख लो कैसा निकला। इस साल फिर इसने ऐसी ही बात सोची और टीले के ऊपर बो आया।

पड़ोसी—और क्या, जैसे इसे पहले से मालूम हो गया हो कि कैसा मौसिम रहेगा। सच भैया, तुम्हारे यहाँ भौत नाज हुआ है—भौत ही तो हुआ है। इसमें कोई झूँठ नहीं। (चुप हो जाता है। फिर ज़रा देर में हाँ, मैं तुम्हारे पास थोड़ी-सी राई माँगने आया था। हमारे यहाँ सब राई चुक गई है। मैं तुम्हें अगले साल लौटा दूँगा।

किसान—हाँ, हाँ, भाई। जितनी जी चाहे ले लो।

मज़दूर—(किसान को धीरे से इशारा करता हुआ) मत दो

किसान—चुप, जा तू। ले लो भाई।

पडोसी—मैं अपनी बोरी ले आऊँ तो। (जाता है।)

मज़दूर—(स्वत) अपनी पुरानी आदतों को अभी वैसे ही पकड़े हुए हैं। अब भी दिए जाता है। अभी हमेशा मेरे कहने पर नहीं चलता मगर ठहरो, अब जल्दी ही इसका देना बन्द हो जायगा।

किसान—(देहली पर बैठता हुआ) किसी भले आदमी को कुछ देने में हरज ही क्या है ?

मजदूर—देना और बात है और वापिस पाना और। तुम नहीं जानते कि उधार देना तो किसी चीज को पहाड़ पर से नीचे लुढकाने की तरह है।

है। इन दो बरसों में मैंने तुझे कभी अपने जूते उतारते नहीं देखा। फिर भी तू दुनिया भर की बातें जानता है। कहाँ से सीखीं तैंने ये बातें ?

मजदूर——मैं बहुत इधर-उधर रहा हूँ।

किसान——तो तू यह कहता है कि इससे ताकत आती है ?

मजदूर——कुछ रोज ठहरो न। खुद ही पीकर इसके असर को देख लेना।

किसान——और वह बनेगी कैसे ?

मज़दूर—एक बार जान लेने पर फिर बनाना कोई मुश्किल नहीं है। सिर्फ एक ताँबे के और दो लोहे के बरतनों की जरूरत होगी।

किसान—और, क्यों रे, उसका स्वाद भी अच्छा ही होगा ?

मज़दूर—ऐसा बढ़िया जैसे अमरित। एक बार चख लेने पर फिर तुम उसे कभी नहीं छोड़ सकोगे।

किसान—ऐसी बात है ? अच्छा तो मैं अपने पड़ोसी के यहाँ जाऊँगा। उसके पास ताँबे का एक बरतन था। करेंगे अजमाइस फिर।

[४]

एक खलिहान—बीच में ताँबे का एक बरतन ढका हुआ आग पर रक्खा है—वहीं एक दूसरा बरतन भी रक्खा है। जिसमें नीचे की तरफ एक टोंटी लगी हुई है।

मज़दूर—(एक कुल्हड़ टोंटी के नीचे लगाता है और शराब पीता है) लो मालिक, यह तैयार हो गई।

किसान—(उकड़ूँ बैठ कर देखता हुआ) कैसी अजीब बात है। यह इसमें से पानी-सा कैसा निकल रहा है ? तू इस पानी को क्यों निकाल रहा है रे ?

मज़दूर—यह पानी नहीं है। यही वह चीज़ है।

पर उधार वसूल करना उसे पहाड़ के ऊपर खींचने की तरह मुश्किल है। यही बात पुराने लोग कहते हैं।

किसान—अरे तो, फिकर क्या है। हमारे यहाँ भौतेरा नाज है।

मजदूर—तो इससे क्या हुआ ?

किसान—हमारे पास जितना नाज है उतना तो दो बरस में भी नहीं चुकेगा। हम इतने नाज का करेंगे ही क्या ?

मजदूर—करेंगे ही क्या ! मैं तुम्हें इसकी ऐसी चीज बना कर दे सकता हूँ कि तमाम जिन्दगी मजा उड़ाओ।

किसान—ऐसी क्या चीज बनाएगा भला ?

मजदूर एक पीने की चीज। ऐसी कि कमजोरी के वक्त तुम्हें ताक़त दे, भूख के वक्त तुम्हें तसल्ली पहुँचाए, बेचैनी के वक्त नींद लाए, उदासी के वक्त खुशी पहुँचाए और जिस वक्त तुम्हे डर मालूम होता हो उस वक्त तुम्हे बहादुर बनाए। ऐसी चीज मैं तैयार कर सकता हूँ इससे।

किसान—जा, जा। बातें बना रहा है। ऐसी चीज बनाएगा भला यह।

मजदूर—बातें तो बना ही रहा हूँ ! क्यों, ऐसे ही मैं उस वक्त भी बातें बनाता था जब मैंने तुम से दलदल में और फिर टीले पर बोने को कहा था ? तब तुम मेरा यकीन नहीं करते थे, लेकिन अब तुम्हें मालूम हो गया। ऐसे ही तुम्हे इस बार भी मालूम हो जाएगा।

किसान—पर तू इसे बनाएगा काहे से ?

मजदूर—क्यों, इसी अनाज से तो।

किसान—पर इसमें कोई पाप तो नहीं है ?

मजदूर— लो सुनो। पाप क्यों होने लगा। हर चीज़ आदमी को मजा करने के लिए दी गई है।

किसान—अच्छा तो नज़न, यह तो बता कि यह अकिल की बातें तैंने सीखी कहाँ से। देखने में तो तू कुछ ऐसा-ही सा लगे है, और मेहनती भी

है। इन दो बरसों में मैंने तुझे कभी अपने जूते उतारते नहीं देखा। फिर भी तू दुनिया भर की बातें जानता है। कहाँ से सीखीं तैंने ये बातें ?

मजदूर---मैं बहुत इधर-उधर रहा हूँ।

किसान---तो तू यह कहता है कि इससे ताक़त आती है ?

मजदूर---कुछ रोज ठहरो न। खुद ही पीकर इसके असर को देख लेना।

किसान---और वह बनेगी कैसे ?

मज़दूर---एक बार जान लेने पर फिर बनाना कोई मुश्किल नहीं है। सिर्फ एक ताँबे के और दो लोहे के बरतनों की जरूरत होगी।

किसान---और, क्यों रे, उसका स्वाद भी अच्छा ही होगा ?

मज़दूर---ऐसा बढ़िया जैसे अमरित। एक बार चख लेने पर फिर तुम उसे कभी नहीं छोड़ सकोगे।

किसान---ऐसी बात है ? अच्छा तो मैं अपने पड़ोसी के यहाँ जाऊँगा। उसके पास ताँबे का एक बरतन था। करेंगे अजमाइस फिर।

[४]

एक खलिहान---बीच में ताँबे का एक बरतन ढका हुआ आग पर रक्खा है---वहीं एक दूसरा बरतन भी रक्खा है। जिसमें नीचे की तरफ एक टोंटी लगी हुई है।

मज़दूर---(एक कुल्हड़ टोंटी के नीचे लगाता है और शराब पीता है) लो मालिक, यह तैयार हो गई।

किसान---(उकड़ूँ बैठ कर देखता हुआ) कैसी अजीब बात है। यह इसमें से पानी-सा कैसा निकल रहा है ? तू इस पानी को क्यों निकाल रहा है रे ?

मज़दूर---यह पानी नहीं है। यही वह चीज़ है।

किसान—अच्छा ? इतनी सफेद ? मैं तो समझता था कि नाज के ही रङ्ग की होगी। यह तो बिलकुल पानी की तरह है।

मज़दूर—लेकिन जरा इसे सूँघ कर तो देखो।

किसान—वाह! कैसी खुसबू है! देखूँ जरा मुँह के भीतर यह कैसी मालूम होती है। चखा तो सही जरा।

(मज़दूर के हाथ से कुल्हड़ लेना चाहता है)

मज़दूर—देखो, तुम इसे गिरा दोगे। (टोंटी घुमा कर कुल्हड़ भरता है और पी जाने के बाद होंठ चाटता है।) ठीक हो गई। लो अब पीओ। दूसरा कुल्हड़ भर कर किसान को देता है।

किसान—(पहले चखता है, फिर अधिकाधिक पीकर कुल्हड़ खत्म कर देता ह और उसे लौटा देता है।) जरा-सी और दे। इतनी से क्या सवाद मालूम हो सके है।

मज़दूर—(हँस कर) मालूम होता है तुम्हे पसन्द आ गई। और (देता है।)

किसान—हूँ-ऊँ, अबके आया है मजा। यह तो घरवाली को भी पिलाना चाहिए। अरी ओ अरी, यहाँ तो आ। ले यह तैयार हो गई। चल जल्दी से।

(पत्नी एक कन्या को लिए हुए आती है।)

पत्नी—क्या है ? यह इतनी गड़बड़ काहे कर रक्खी है ?

किसान—ले जरा चख के तो देख कि हमने क्या बनाया है। (कुल्हड़ हाथ मे देता है) सूँघ के देख कैसी खुसबू है।

पत्नी—(सूँघ कर) ओ मैया-आ!

किसान—इसे पी-ई।

पत्नी—पर सायद इससे कुछ नुकसान तो न हो।

किसान—निरी बेवकूफ ही है री। अरी इसे पी के तो देख।

पत्नी—(पी कर) हाँ, है तो अच्छी।

किसान—अच्छी तो है ही। (कुछ-कुछ नशे में) और तू जरा देखना कि होता क्या है। नजन कहता है कि इससे थकान जाती रहती है, जवान बुड्ढे हो जाते हैं—अरे वह, बुड्ढे जवान हो जाते हैं। अब देख न, मैंने दो ही कुल्हड़ पिये हैं और मेरी तमाम हड्डियाँ जैसे खुल सी गई हों। (अकड़ता हुआ) देखा तैंने ? अरी जरा रुक जा। जब हम और तू रोज इसे पिया करेंगे। तो फिर जवान हो जाएँगे अरी मेरी रानी ई। (आलिंगन करता है।)

पत्नी—(हटाती हुई) चलो हटो। तुम तो इससे निरे पागल ही हो गए।

किसान—और तू कहती थी कि मैं और नजन सारा नाज लुटाए डाले हैं। पर अब देख, कैसी अच्छी चीज हमने इस नाज से बनाई है। है न अच्छी, बोल।

पत्नी—सच तो है। जब इससे बुड्ढे जवान हो जावे हैं तो इसके अच्छी होने में क्या सक है। देख लो, तुम्हें इसने कैसा खुस बना दिया और मुझे भी कुछ-कुछ खुसी-सी मालूम हो रही है। अच्छा तो फिर आओ गीत गाए हा हा (गाती है।)

किसान—अब हम सब जवान हो जाएंगे—सब के सब जवान .

पत्नी—मैं सासू को बुला लाऊँ। वह सदा उदास और बड़बड़ाती रहे हैं। उन्हें फिर नया करना चाहिये। जवान होके वह भलीमानस हो जाएँगो।

किसान ..(नशे में) हाँ हाँ जा, बुला ला मा को और दादा को भी। अरी ओ लौंडिया,जा दौड़ के अपनी दादी और दादा को तो बुला ला। कहियो कि चूल्हे के पास बैठे क्या ताप रहे हो, चलो तुम्हें जवान बना दें। जा, जल्दी जा। देख. .वन, टू, थिरी…हाँ ठीक जैसे बन्दूक में से गोली

छूट गई हो (लड़की भाग कर जाती है। अपनी स्त्री से) आ इतने एक कुल्हड़ और पिएँ।

(मजदूर दोनों को एक एक कुल्हड़ भर कर देता है।)

किसान—(पी कर) पहले तो चुटिया में जवानी आई, फिर जीभ में, उसके बाद हाथों में। और अब पैरों में आ रही है। मालुम होता है मेरे पैर जवान हो रहे—आप ही आप आगे को चलते हैं।

(नाचने लगता है।)

पत्नी—तू सचमुच बड़ा हुसियार है। नज्जन। अच्छा, तू ढोलकी बजा और हम गावें।

(मजदूर ढोलक लेकर बजाने लगता है। किसान और उसकी पत्नी गाते हैं।)

मजदूर—(दोनों के आगे बजा-बजा कर उनकी ओर देखता और आँखे मटकाता है।) तुम्हें उस टुकड़े का बदला देना पड़ेगा। और तुम अभी दे रहे हो, मेरे दोस्तों ! अब थोड़े-ही यह इनसे छूट सकती है। सरदार कभी भी आकर देखले।

(एक तन्दुरुस्त वृद्धा स्त्री और सुफेद बालों वाले एक वृद्ध किसान का प्रवेश।)

वृद्ध किसान—यह सब हो क्या रहा है ? क्या तुम सब पागल हो गये हो ? और लोग तो काम कर रहे हैं और तुम्हें नाचना सूझा है।

पत्नी—(नाचती और ताली बजाती है) ओ . हो.. हो...हो...
(गाती है।)

करती पाप य' मैं जानूं, पर बेपाप फकत भगवानूं।

वृद्धा—क्यों री चुड़ैल, चौका अभी तक धुला भी नहीं और तू यहाँ नाच रही है।

किसान—ठहर ठहर मा, देख तो हमने कैसा काम करा है। हम बुड्ढों को भी जवान बना सकते हैं। ले जरा इसे पी के देख।

वृद्धा - कुएँ में भोतेरा पानी पड़ा है। (सूँघ कर) पर तैने इसमें क्या डाल दिया है। मेरा तो—अरे राम-कैसी खसबोई है ..

किसान—इसे पी तो सही।

वृद्धा—(चख कर) ओ मैया! इससे कहीं मर तो ना जाऊँगी ?

पत्नी—अजी, ओर जी आओगी। फिर जवान हो जाओगी।

वृद्धा—वक काहे को रही है ? (पीती है।) पर है तो अच्छी। रोज जो पानी पिया करे हैं उससे अच्छी है। लो चाचाजी, तुम भी पिओ। (वृद्धा किसान को देती है।)

(वृद्ध बैठ जाता है और सिर हिलाता है।)

मजदूर—खैर, उन्हें रहने दो। पर दादी, तुम एक कुल्हड़ और लो। (देता है।)

वृद्धा—भीत्त कहीं नुकसान न करे। अरे यह तो जलन-सी पड़ रही है पर, फिर भी है बड़ी अच्छी।

पत्नी—पिओ तो। फिर तुम्हें यह नसों में दौड़ती हुई मालुम होगी! (वृद्धा पीती है।) यों, अभी पैरों तक पहुँची या नहीं ?

वृद्धा—सच्ची, यह तो दौड़ती-सी लगे है। अब यह यहाँ मालुम हो रही है। और इससे कैसा हल्कापन—सा लगने लगा। लाओ, जरा सी और दो। (फिर पीती है।) वाह, अबके तो मैं बिलकुल ही जवान हो गई।

किसान—मैंने तुझ से कहा था कि नहीं।

वृद्धा – हाय, मेरा बुड्ढा न हुआ ! एक दफे और देख लेता कि मैं जवानी में कैसी थी ।

(मजदूर बजाता है । किसान ओर पत्नी नाचते हैं ।)

वृद्धा—(बीच में आकर) इसे ही नाचना कहे हैं क्या ? हटो, देखो, मैं बताऊँ । (नाचती है ।) यों नाचते हैं ..फिर यों, इस तरह, समझे ?

(वृद्ध किसान बरतन के पास जाकर टोंटी घुमा देता है और शराब ज़मीन पर गिर कर बहने लगती है ।

किसान—(वृद्ध की ओर झपटता है), यह क्या कर दिया, क्यों रे, दादा के बच्चे ! ऐसी अच्छी चीज बहादी ! जा यहाँ से खूसट ! (उसे ढकेल कर टोंटी के नीचे कुल्हड़ लगा देता है ।) लेके तमाम बरतन खाली कर दिया ।

वृद्ध किसान—यह बुरी बात है, अच्छी नहीं है । परमात्मा ने अच्छी फसल इसलिये दी थी कि आप खाते और दूसरों को खिलाते । पर तुमने उससे यह राच्छसो के पीने की चीज बनाई । इसमें कोई नेकी नहीं है । छोड़दो इसे, नहीं तो खुद भी मरोगे और दूसरों को भी मारोगे । यह आग है आग, तुम्हें सब को जला देगी । (चूल्हे से एक जलता हुआ लकड़ी का टुकड़ा निकाल गिरी हुई शराब में लगाता है । शराब जल उठती है । सब लोग भय के साथ देखने लगते हैं ।)

[५]

(झोपडी का भीतरी हिस्सा—मज़दूर अकेला—उसके सींग और खुर दिखाई दे रहे हैं ।)

मजदूर—नाज इतना है कि उसके रखने तक की जगह नहीं है, और उसे इन चीज की चसक पड़ गई है । तब के बाद कई बार हमने शराब

बनाई और एक कनस्तर भर के छिपा कर भी रख दिया है। बेकार किसी की खातिर करने की हमें ज़रूरत नहीं, लेकिन अगर किसी से अपना कुछ काम निकालना हो तो जरूर हम उसकी खातिर करेंगे। इसीलिए आज मैंने उससे कहा है कि गाँव के पचों को बुला कर उनकी दावत करदो जिससे ये तुम्हारे और तुम्हारे दादा के बीच में बटवारा करादें और जो कुछ है वह तुम्हीं को मिल जाए, बुड्ढे को कुछ भी न मिले। आज मेरे तीन साल पूरे हो गए और मेरा काम भी पूरा हो गया। सरदार अब आकर खुद देख जाए, उसके देखने पर मुझे शरमिन्दा होने की ज़रूरत नहीं होगी।

(पिशाचों का सरदार भूमि के भीतर से निकलता है।)

सरदार—तेरी मियाद पूरी हो गई। क्या तूने अपनी रोटीवाली भूल का बदला चुकाया। मैंने तुझसे कहा था कि मैं खुद आकर देखूँगा। अब दिखा कि तू किसान को ढँग पर ला सका या नहीं।

मज़दूर – पूरे ढँग पर। अपने-आप देख न लो। कुछ तो अभी यहाँ आकर इकट्ठे होंगे। खाट के नीचे छिप कर देखते रहना कि वे क्या करते हैं। तुम खुश हो जाओगे।

सरदार—(चारपाई के नीचे छिप कर) अच्छी बात है। देखूँगा यहाँ से कि क्या किया है इसने।

(किसान और चार वृद्ध आदमियों का प्रवेश—पीछे-पीछे किसान की पत्नी आती है। मनुष्य चटाई पर बैठ जाते हैं। पत्नी भोजन की सामग्री उनके सामने रखती है। वृद्ध लोग किसान की शुभ-कामना करते हैं।)

पहला वृद्ध—क्यों, क्या यह पीने की चीज़ भौत बनाई है ?

मज़दूर—जितनी की जरूरत थी उतनी बना डाली। ऐसी बढ़िया चीज़ को खराब क्यों किया जाए।

दूसरा वृद्ध—और ठीक भी बनी है ?

मजदूर—पहिली बार से बहुत अच्छी है !

दूसरा वृद्ध—पर तैंने इसका बनाना सीखा कहाँ से ?

मज़दूर—इस दुनिया में घूमने-फिरने से बहुत-सी बातें आ जाती हैं।

तीसरा वृद्ध—इसमें सक नहीं, नज्जन एक बड़ा जानकार सकस है !

(पत्नी शराब और कई एक कुल्हड़ लाती है और उन्हे भर कर वृद्धों को देती है ।)

पहला वृद्ध—जै नरायन की। (पीता है !) हाँ, यह है तो अच्छी। सीधी एक-एक जोड़ में जा घुसी। पीने की चीज असल में यही है।

(शेष तीन वृद्ध भी पीते है—सरदार चारपाई के नीचे से निकलता है—मजदूर उसके पास जा खड़ा होता है।)

मजदूर—(सरदार) से अब देखना क्या होता है। मैं इस औरत को अपने पैर से भड़का दूँगा और यह शराब को गिरा देगी। पहले उसे अपने आखिरी बचे हुए टकड़े की भी परवाह नहीं थी, पर अब देखना कि एक कुल्हड़ शराब के लिए वह क्या क्या कहती है।

किसान—अच्छा तो अरी—और भर-भर के दे सबको। देख, इधर सुन—पहले इन्हें हमारे दोस्त को दे, फिर सपत चाचा को दे।

(पत्नी कुल्हड भर कर लाती है—मज़दूर उसके पैर में अपना पैर उलझा देता है—वह भड़भड़ा कर गिर पडती है और कुल्हड हाथ से छूट जाता है।)

पत्नी—ओ दैया ! तमाम बिखर गई। तू क्यों बीच में आ गया, नालायक कहीं का।

किसान—कैसी भौंडी जानवर है। उँगलिएँ हैं, देखो, जैसे भैंस के अँगूठे। और दूसरों को गालियाँ देती फिरती है, कैसी अच्छी चीज धरती पै वहा दी।

पत्नी—तो क्या मैंने जान कर गिरादी।

किसान—हाँ जान के ही। जरा ठहर, फिर बताऊँगा तुझे कि धरती पै शराब किस तरह गिराई जावे है। (मजदूर से) और तू गधा, नालायक़ तू यहाँ क्या करता था? जम के यहाँ जगह नहीं है क्या?

(पत्नी फिर कुल्हड भर कर आगे बढाती है।)

मजदूर (सरदार के पास जाकर) देख रहे हो? पहले अपनी अकेली रोटी का भी इसे रंज नहीं था। अब एक कुल्हड़ के लिए वह अपनी औरत को मारते-मारते रह गया। मुझसे जम के घर जाने के लिए कहा।

सरदार—बहुत ठीक। खूब किया। मैं खुश हूँ।

मजदूर—जरा और ठहरो। यह बोतल खाली हो जाने दो। फिर देखना कि क्या-क्या रंग नजर आते हैं। अभी से ये लोग एक दूसरे की ठकुरसुहाती बातें कर रहे हैं, जरा देर में तो खुशामद ही करने लगेंगे-- जैसे मक्कार लोमड़ियाँ भी होती हैं न।

किसान—अच्छा पंचभाइयों। अब मेरे कारज में तुम्हारी क्या सलाह है? मेरे दादा मेरे ही पास रहते रहे और मैं उन्हें बराबर खिलाता रहा। अब वह मेरे चाचा के यहाँ चले गए हैं और मिल्कियत में से हिस्सा माँग कर चाचा को देना चाहते हैं। अच्छो तरह सोच के देखो। तुम अकलबन्द लोग हो और हमारे तो जैसे प्रान ही हो। तुम्हारे मुकाबले का गाँव भर में कोई नहीं। अब तुम्हीं हो, सुराज। सारा गाँव तुम्हें अव्वल नम्बर का आदमी कहता है और मैं तो तुम्हे अपने मा-बाप से जादे मानूँ हूँ। सपत चाचा तो हमारे पुराने हितैषी हैं।

पहला वृद्ध—(किसान से) अच्छे आदमी से बातें करने से जी खुस होता है। इसी तरह अकल आती है। वही बात तुम्हारी है। गाँव भर मे तुम्हारे मुकाब्ले का कोई नहीं है।

दूसरा वृद्ध—अजी, क्या कहने हैं इनके। बड़े अकलवन्द, बड़े मुरौवती। इसी से तो मैं तुम्हें पसन्द करता हूँ।

तीसरा वृद्ध—मेरी तो भई, तुमसे पूरी सहमताई है बस कहने को लवज नहीं मिलते। आज ही घर वाली से कह रहा था...

चौथा वृद्ध अजी, सच पूछो तो इनसा कोई ढूँढने से भी नहीं मिल सकता। जो बखत पड़े पे काम आवे वही अपना मिन्तर होता है।

मजदूर—(सरदार को कुहनी से कुरेद कर) सुनते हो? सब के सब झूठ बोल रहे हैं। पीठ-पीछे सब एक दूसरे को गालियाँ देते हैं। पर देखो यहाँ कैसे घुल-घुल कर बातें कर रहे हैं, गोया कि लोमड़िया दुम हिला रही हों। यह तमाम इस शराब की ही करामात है।

सरदार—यह शराब तूने बहुत अच्छी चीज बनाई है—बहुत अच्छी। अगर ये लोग इसी तरह झूठ बोलने लगें तो फिर के सब हमारे हो जाएँगे। मैं तुझ से खुश हुआ।

मजदूर—अभी जरा और ठहरो। दूसरी बोतल खत्म होने पर ये और भी रंग लाएँगे।

पत्नी—(शराब देती हुई) लो एक कुल्हड़ और लो।

पहला वृद्ध—मौत तो नहीं हो जाएगी जै भगवान्! (पीता है।) भले आदमी के पास बैठ के पीने मे भी मजा आता है।

दूसरा वृद्ध—पिए बगैर रहा कैसे जाए। ऐसी चीज कहीं मुँह से हटाई जाती हैं। खूब जिओ भैया, तुम और तुम्हारी घरवाली।

तीसरा वृद्ध—तुम्हारी उमर में बरक्कत हो भाई। वाह, कैसी अच्छी चीज पिलाई है। खूब मजा आया। हम तुम्हारा सब काम ठीक कर देंगे। यह मेरे ही में है।

पहला वृद्ध—तुम्हारे हाथ में। यह है उनके हाथ मे जो तुम्हारे भी पच हैं।

तीसरा वृद्ध—मेरे पच मूरख हैं। (घुड़क कर) तू क्यों टरटर करता है।

दूसरा वृद्ध - अब यह तुमने क्या शुरू किया ? बड़े बेसमझ आदमी हो।

चौथा वृद्ध—नहीं, नहीं इनका कहना सच्च है। महमान कोई किसी की वैसी ही खातर थोड़े ही करता है। उसका अपना कारज है। सो, बस कारज होजाएगा। बस खातर करे जाओ और हमारी ठीक-ठीक आवभगत करो। साफ बात कहता हूँ। गरज तुम्हारी मुझ से है, मेरी तुम से नहीं। तुम तो निरे सुअर के भाई हो।

किसान—और तुम निरे सुअर ही हो। यहाँ किच-किच करने क्यों आए हो। समझे होगे डरा लूँगा। तुम सब खाने-भर के ही सेर हो।

पहला—तू सेखी किस बात की बघार रहा है तो ? याद रखना, नाक पकड़ के रगड़ दूँगा।

किसान—आ, देख लेवें फिर, कौन किसकी नाक रगड़े है।

दूसरा—अपने को ऐसा कहीं का समझता होगा। जम के घर ना चला जा। भले आए इसके यहाँ। चलो जी अपने-अपने घर को चलो। (जाने के लिए उठता है।)

किसान—क्या, क्या, मडली छोड़ के जावेगा। (पकड़ता है।)

दूसरा—छोड़ मुझे। अरे छोड़। नहीं तो जमाऊँ हूँ एक धौल।

किसान—नहीं छोड़ते। तुझे क्या हक है कि .

दूसरा—देख, यह हक है। (मारता है।)

किसान—(अन्य वृद्धों से) दुहाई! दुहाई! मदत! मदत!

(सब लोग एक दूसरे-पर टूट पड़ते हैं और सब के सब एक साथ बोलते हैं।)

पहला वृद्ध—इसी लिए तो। इसी लिए तो कि यहाँ चहल-पहल हो रही है।

दूसरा वृद्ध—मैं सब ठीक करा दूँगा।

तीसरा वृद्ध—अच्छा थोड़ी और पिलाओ।

मजदूर—(सरदार से) देखा तुमने ? इस वक्त इनमें भेड़िये का खून दौड़ रहा था और ये भेड़ियों की तरह खूँखार हो गए थे।

सरदार—बेशक, शाबाश। मैं तुझ से बहुत खुश हूँ।

मजदूर—जरा और ठहरो। इन्हें तीसरी बोतल खत्म कर लेने दो। फिर और भी ज्यादा रंग चढ़ेगा।

[६]

गाँव की एक गली—दाहिनी ओर कुछ वृद्धा स्त्रियाँ किसान के दादा के साथ लकड़ी के लट्ठों पर बैठी हैं—बीच में स्त्रियों, बालकों और बालिकाओं का एक दल है—नाच-गाना हो रहा है—बालक, बालिकाएँ, स्त्रियाँ गा रही हैं—झोपड़ी के भीतर शोर होता है और शराबियों के चिल्लाने की-सी आवाज आती है—एक वृद्ध मनुष्य बाहर निकल कर नशे की आवाज में चिल्लाता है—किसान उसके पीछे-पीछे आकर उसे फिर भीतर ले जाता है।

किसान का दादा—हरे राम! कैसी करतूत है! कैसी करतूत है! इससे जादे की किसी को जरूरत ही क्या है कि रोज अपना काम ठीक-ठीक कर लिया और कोई तीज-त्यौहार हुआ तो अपने कपड़े-उपड़े धो लिए, जोत-बोत सफा कर लिया और फिर जरा देर बालकों के पास बैठके जी बहला लिया, या जरा बाहर निकल गए और गाँव के बूढे लोगों से तनक पुरानी बातें सुनीं—या कुछ देर को लौंडे-लपाड़ों में ही मिल गए और उनको खेल देखा। अब यही लोग यहाँ खेल-कूद कर रहे हैं। इन्हे देखके कैसा जी खुसी होता है। इसमें दिल को भी खुसी होती है और कोई बुराई भी नहीं है। (झोपड़ी के भीतर शोर होता है।) पर इस तरह की करतूत…

भगवान, ये क्या है ? इससे आदमियों का बिगाड़ होता है और राच्छसों को खुसी । जब सोट चढ़ने लगता है तभी ऐसी बातें सूझती हैं ।

(नशे में भरे लोग लड़खड़ाते हुए निकलते हैं । चिल्लाते हैं और लड़कियों को पकड़ लेते हैं ।)

दो लड़कियाँ —छोड़ो सपत दादा !! यह क्या —यह क्या करते हो ।

सब लड़के लड़कियाँ—चलो गली के भीतर चलें । अब यहाँ हमारा खेल नहीं हो सकेगा ।

(खेलनेवाला दल चला जाता है ।)

किसान—(दादा के पास जा कर ।) लो, अब क्या मिला तुम्हें । पच लोग तो सब कुछ अब मेरे ही नाम कर देगें । (अँगूठा दिखा कर) और तुम्हारे हिस्से में पड़ेगा यह । समझ गए न ? मेरा होगया सब, मेरा । तुम्हारा कुछ भी नहीं रहा । अभी जान लोगे सब कुछ अपने आप ।—

(चारों वृद्ध एक साथ बोलते हैं ।)

पहला वृद्ध—ठीक है । मैं जानता हूँ कि असल बात क्या है ।

दूसरा वृद्ध —(नाचता हुआ आगे बढ़ता है और पहले को झटका देकर अलग हटाता हुआ गाता है ।)

सब से पहले सुनो मुझे, मैं हूँ एक पुरानी चिड़िया । ताना विन...

तीसरा वृद्ध —वाहरे यार, क्या पिलाई ! तीनों तिरलोक सिद्ध हो गए ।

चौथा वृद्ध—(नाचता और गाता है ।)

'खिसक चलो घर के भीतर, या खिसक चलो चरपैया पर,

जगह नहीं, प्यारी घरवाली कहो धरें कहँ अपना सर ।

(वृद्ध लोग अपना-अपना जोड़ा बना कर एक दूसरे के हाथ में हाथ देकर आगे पीछे चलते हैं। किसान झोपड़ी की तरफ लौटता है परन्तु वहाँ तक पहुँचने से पहले ही लड़खड़ा कर गिर पड़ता है और कगहट के ढग से न जाने क्या-क्या बड़बड़ाता है। किसान का दादा तथा उसके साथी चुपचाप उठते हैं और वहाँ से चले जाते हैं।

मजदूर—तो देख लिया अब तुमने खुद ? इस समय उनके भीतर सुअर का खून दौड़ रहा है। भेड़िए से अब ये लोग सुअर बन गए हैं। (किसान की तरफ इशारा करता है।) वह देखो वह पड़ा है, वहाँ कीचड़ मे और सुअर का मानिन्द भिनभिना रहा है।

सरदार—तू खूब कामयाब हुआ है। वाह, वाह पहले, लोमड़ियों की तरह—फिर भेड़ियों की तरह—और अब सुअर की तरह—नहीं, नहीं, तूने यह बहुत बढ़िया पीने की चीज बनाई है मगर, यह तो बता, तूने इसे बनाया किस तरह ? मैं समझता हूँ शायद लोमड़ियो, भेड़ियों और सुअरो का खून मिलाकर बनाई होगी।

मजदूर—अजी नहीं। मैंने तो उसे सिर्फ बहुत सारा नाज पैदा करवा दिया। जब तक उसके पास सिर्फ जरूरत भर को ही नाज था तब तक तो वह अपने आखिरी बचे हुए टुकड़े की भी फिक्र नहीं करता था, लेकिन जब उसे अपनी जरूरत से बहुत ज्यादा मिल गया तो उसके भीतर लोमड़ी, भेड़िए और सुअर का खून जाग पड़ा। हैवानी खून तो उसके अन्दर छिपा हुआ था ही—हाँ, उस खून को उभारने के लिए मौका नहीं मिलता थो।

सरदार—बेशक, मैं मानूंगा कि तू होशियार आदमी है। तूने अपनी उस टुकड़ेवाली भूल का बहुत अच्छा एवज चुकाया है। अब तो इन लोगो को सिर्फ यह चीज़ पीते रहने की जरूरत है। फिर ये हमारे चंगुल से कहाँ जा सकते हैं। *

———— ——

* टाल्स्टाय के The First Distiller का अनुवाद।

ताराशिशु

[१]

किसी समय की बात है। दो ग़रीब लकड़हारे जैतून के एक सघन जगल मे हो कर अपने घर जा रहे थे। सर्दी का मौसम था और रात जैसे काट खाना चाहती थी। पृथ्वी के ऊपर और वृक्षों की टहनियों पर वर्फ़ की तहें जम रही थीं। पाला इस जोर से गिर रहा था कि इन दोनों को अपने इधर-उधर उसके पत्तियों पर पड़ने की झीमी सीत्कार सुनाई देती थी। और जिस समय वे पहाड़ी स्रोतिका के पास पहुँचे तो वह शान्त, सुखी भाव से वायु में सो रही थी, क्योंकि राजा हिम ने उसका चुम्बन कर लिया था।

ठड तो इतनी कड़ाके की थी कि पशुओं और पक्षियों तक की समझ में न आता था कि क्या करें।

अपनी टांगों के बीच मे अपनी पूँछ को समेट कर लँगड़ाते हुए-से भेड़िए ने कहा, "उफ् पूरा शैतानी मौसम हो रहा है। सरकार इसका कोई प्रबन्ध क्यों नहीं करती।"

जगल की चिड़ियों ने चहचहाने का प्रयास किया—"चुहु चुहू, चुहु चुहू। बुढ़िया पृथ्वी मर गई है। इसलिए लोगों ने उसे सफ़ेद वस्त्रों मे लपेट कर रक्खा है।"

"पृथ्वी का विवाह होने वाला है और उसने अपने विवाह के लिए सफ़ेद कपड़े बनवाए हैं," एक कमेड़ी दूसरी से बोली। उनके छोटे-छोटे पैर बिल-कुल अकड़ गए थे। परन्तु कठिन परिस्थिति को आनन्द और अद्भुत के कौतूहल से स्वीकार करना वे अपना कर्तव्य समझती थीं।

भेड़िया गुरगुराया—"हिश्! हिश्! मैं कहता हूँ यह सब सरकार का दोष है और यदि तुम कोई मेरी बात को नहीं मानोगी तो मैं तुम्हें खा

डालूँगा।" भेड़िया पूरे व्यावहारिक ढंग का व्यक्ति था और कोई युक्ति सोचने के लिए उसे कभी कठिनता नहीं होती थी।

खुटबढ़ई जन्म का दार्शनिक था। बोला, "मेरी बात तो यह है कि मैं समाधानों के फेर में जरा नहीं पड़ता। यदि एक बात एक प्रकार की है तो वह वैसी है ही। उसको और किसी तरह समझने से क्या लाभ,—और सचमुच इस समय बड़ी विकट सर्दी है।"

और सचमुच उस समय बड़ी विकट सर्दी थी भी। छोटी छोटी गिलहरियाँ जो पेड़ों के खोखलों में रहा करती थीं आपस में एक दूसरी की नाक से नाक रगड़ कर अपने को गरमा रही थीं तथा खरगोश अपने-अपने बिलों में उमेठे हुए पड़े थे। उन्हें अपनी खिड़कियों से बाहर झाँखने का भी साहस नहीं हो रहा था। प्रकृति में केवल उल्लू ही ऐसे महाजन्तु थे जिन्हें कुछ मजा आ रहा था। उनके पंख ठंड से अकड़ पापड़ बन रहे थे, पर वे अपनी गोल-गोल आँखें इधर-उधर घुमा कर एक दूसरे से कहते थे—"अहा-हा, कैसी अच्छी ऋतु है।"

बढ़े जा रहे थे और बढ़े जा रहे थे दोनों लकड़हारे, अपनी उँगलियों और हथेलियों को बार-बार फूँकते हुए और अपने नालदार जूतों को बरफ की ज़मीन पर पटकते हुए। एक बार वे एक गड्ढे में गिर पड़े, और जब वे निकले तो ऐसे जैसे आटा पिसते समय आटा पीसने की मशीन के पास से आटा पीसने वाले। और एक बार वे बर्फ पर ही फिसल पड़े और उनके सिर के गट्ठर गिर जाने से सब लकड़ियाँ बिखर गईं। बेचारों को उस सर्दी में उन्हें बीन-बीन कर फिर गट्ठर बनाने पड़े। फिर, एक बार वे अपना रास्ता ही भूल गए और डर के मारे अधमरे हो रहे। उन्हें मालूम था कि जो लोग हिम की गोद में आराम करने का शौक करते हैं उन पर हिमराज की कृपा नहीं होती। परन्तु भगवान् पर भरोसा रख कर वे फिर पीछे को लौटे और अपनी आशा निराशा को मिला कर धीरे-धीरे चलते हुए वे जैसे-जैसे जंगल के सिरे पर पहुँच गए। वहाँ से उन्हें अपने सामने उस गाँव के घरों का प्रकाश दिखाई देने लगा जिसमें उनका भी घर था।

इस समय अपने पुनर्जन्म पर उन्हें ऐसा हर्ष हुआ कि वे बड़े ज़ोर से हँस पड़े। पृथ्वी उन्हें चाँदी का एक बड़ा फूल-सा दिखाई देने लगी और चन्द्रमा सोने के एक बड़े फूल के समान।

हँस तो पड़े, परन्तु तुरन्त ही उन्हे अपनी ग़रीबी का ध्यान आया और वे उदास हो गए। उनमें से एक ने कहा, "हम लोग किस लिए ऐसे हँस रहे हैं ?—यह जानते हुए भी कि जीवन तो धनियों के लिए है, हम जैसों के लिए नहीं। बड़ा अच्छा होता जो हम सर्दी से ऐंठ कर जगल मे ही मर गए होते, या किसी जगली पशु के पेट भरने के काम ही आगए होते।"

"सच्ची बात है," उसके साथी ने कहा, "कुछ को तो बहुत ज्यादा दे दिया जाता है और कुछ को बिलकुल ही नहीं। अन्याय ने पृथ्वी को अच्छी तरह बस रक्खा है।"

पर जिस समय वे अपने दुर्भाग्य को इस तरह कोस रहे थे उसी समय एक बड़ी अद्भुत बात हुई। स्वर्ग से एक बड़ा मनोहर और चमकीला तारा गिरा। वह आकाश के सिरे से सरक कर, दूसरे तारों के पार्श्व मे होता हुआ, उनके देखते-देखते, कुछ लम्बे वृक्षों के समूह के पीछे, गिर कर छिप गया। वृक्ष-समूह उन दोनों से केवल इतना दूर था कि उस तक पत्थर फेंका जा सकता था।

"देखो, भगवान ने हमारे लिए सोने का एक बड़ा ढेला फेंका है।"—दोनों के दोनों एक साथ ही चिल्लाए, और वे उसे ढूँढने के लिए दौड़े। आशा ने इतना उद्योगी बना दिया था उन्हें।

और उनमें से एक अपने साथी से अधिक तेज दौड़ लेता था। और वह अपने साथी को पीछे छोड़ पेड़ो के झुण्ड में घुस गया और दूसरी ओर आ निकला। और लो, वहाँ सचमुच ही सफ़ेद बर्फ़ के ऊपर सोने की वस्तु पड़ी चमक रही थी।

झपटा वह उसकी तरफ़, और झुका, और उसने उसे हाथों में उठा लिया। और उसने देखा कि उसके हाथों में अनेक तह किया हुआ बहुत

बढ़िया सुनहरी काम से जड़ा हुआ एक बहुमूल्य लबादा रक्खा है। उसने वहीं से अपने साथी को पुकारा और कहा, "देखो, ओ देखो, आसमान से जो सोने की थैली गिरी थी सो मिल गई मुझे।"

साथी के आ जाने पर दोनों वहीं बरफ के ऊपर बैठ गए और उन्होंने सुवर्ण का बराबर-बराबर भाग करने के लिए लबादे की तह को खोला। परन्तु ओ हो, उसमें तो सोना था ही नहीं, और न चाँदी ही, और न किसी और प्रकार का ही कोई अन्य द्रव्य। तहों के भीतर एक छोटा सा बालक सो रहा था।

तब एक ने दूसरे से कहा, "यही हमारी आशाओं का फल भगवान ने दिया। भाग्य अच्छा नहीं मालूम होता। भला इस बालक को लेकर हम क्या करेंगे? छोड़ चलो इसे यहीं और चलो अपने घर। हम लोग गरीब आदमी हैं। अपने ही बालकों को खिलाने के लिए काफी रोटी नहीं मिलती। दूसरे को कहाँ से खिलाएँगे?"

परन्तु दूसरे ने उत्तर दिया, 'नहीं नहीं, इस बालक को यहाँ बरफ में जमने देने के लिए छोड़ देना बुरी बात होगी। मैं भी तुमसा ही गरीब हूँ और बहुत से आदमियों का मुझे पेट भरना पड़ता है। पर मैं तो इसे अपने घर ले जाऊँगा और मेरी स्त्री इसकी देख भाल करेगी।"

बड़ी मृदुता से उसने बच्चे को लिया, उसे अच्छी तरह लबादे से ढका, जिससे उसे ठण्ड न लग सके, और पहाड़ी से उतर कर गाँव की तरफ चल दिया। उसके साथी को उसकी मूर्खता पर, उसके हृदय की इस कोमलता पर, आश्चर्य हो रहा था।

जब दोनों आदमी बच्चे के साथ गाँव में पहुँच गए तो साथी ने कहा, "बच्चा तो तुमने लिया ही है—यह लबादा मुझे देदो, क्योंकि हम दोनों का हिस्सा तो होना ही चाहिए।"

"न, यह लबादा तुम्हें नहीं मिल सकता। यह न मेरा है, न तुम्हारा। यह तो इस बालक का ही है।" यह कह कर उसने अपने साथी को रवाना किया और अपने घर पहुँच कर द्वार खटखटाया।

और उसकी स्त्री ने जब देखा कि मेरा पति सुरक्षित और तन्दुरुस्त घर लौट आया है तो उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया और उसके गले में हाथ डाल दिए। उसकी कमर से लकड़ियों का गठ्ठर उतार कर वह उसके पैरों पर से बरफ झाड़ने लगी और उससे भीतर आने को कहने लगी।

परन्त वह बोला, "देखो, मुझे जङ्गल मे कुछ मिला है, जिसे मैं तुम्हारे पास लाया हूँ कि तुम इसकी अच्छी तरह देख-रेख करो।" और वह दरवाज़े पर ही खड़ा रहा।

"क्या है ?" स्त्री बोली, 'देखूँ, देखूँ। आज कल घर मे कुछ है भी नहीं और हमें बहुत सी चाजों की ज़रूरत है।"

पति ने लबादे की तह खोल कर सोता हुआ बालक उसके सामने कर दिया। और पत्नी ने बालक को देखा और असन्तोष दिखाते हुए कहा, "यह क्या लाए हो तुम ? क्या भगवान ने हमें बच्चे नहीं दिए हैं जो तुम यह हराम-का कहीं से उठा लाए। और, क्या जाने, कहीं यह कोई बुरी तक़दीर लेकर न आया हो। हम कैसे इसका पालन कर सकते हैं।" उसे क्रोध हो आया।

"पर नहीं, यह मामूली बालक नहीं। यह तारा-बच्चा है।" उसने अपनी पत्नी को बालक के मिलनेका पूरा वृत्तान्त सुनाया।

"पर वह क्यों मानने लगी। उसने उसे चिढ़ाया, मुँह बनाया, और क्रोध मे बोली, "हमारे बालकों को तो रोटी है नहीं, और दूसरे के जाए को हम पेट भरके खिलाएँगे। हमारे लिए भी कोई कुछ करता है ? हमें भी कोई रोटी दे जाता है क्या ?"

"अरी नहीं। ऐसे मत बोल। देख, ईश्वर चिड़ियों तक की चिन्ता रखता है और उन्हें चुग्गा देता है।"

"क्यों, चिड़ियाँ सर्दी से मरती नहीं क्या ? और क्या आजकल सर्दी नहीं है ?"

परन्तु उसके आदमी ने कोई उत्तर नहीं दिया और न वह दरवाजे के भीतर ही आया।

और उसी समय जङ्गल की कटखनी वायु का एक झोंका द्वार में हो कर घुसा और वह काँपने लगी, और काँपती हुई बोली, "दरवाजा क्यो नहीं बन्द कर देते हो ? देखते नहीं, कैसी ठण्डी हवा आ रही है ?"

"जिस घर मे एक ऐसा कठोर हृदय मौजूद हो वहाँ ठिठुराने वाली हवा नहीं आएगी क्या ?" उसने पूछा ।

परन्तु पत्नी ने कोई उत्तर नहीं दिया और वह अँगीठी के पास को सरक गई । और जब थोड़ी देर बाद उसने सिर घुमा कर अपने पति की ओर देखा तो उसकी आँखें आँसुओं से भीग रही थी । यह देख वह भीतर घुस आया और उसने बालक को उसकी गोदी में लिटा दिया,—और पत्नी ने बालक का चुम्बन किया और उसे ओढा कर खटोले पर लिटाया जहाँ उसका सबसे छोटा शिशु सोया हुआ था । जब दिन निकला तो लकड़हारे ने उस सुनहरी लबादे को उठाया और उसे बहुत सँभाल कर सन्दूक मे रख दिया । और बालक के गले मे एक जञ्जीर थी उसे पत्नी ने निकाला और उसे सँभाल कर सन्दूक में रख दिया ।

[२]

इस प्रकार ताराशिशु लकड़हारे के बच्चो के साथ पला और बढ़ा । वह उन्हीं के साथ बैठ कर खाना खाता, उन्हीं के साथ खेलता, और दिन-प्रति-दिन, वर्ष-प्रति-वर्ष, वह अधिकाधिक सुन्दर दिखाई देता और जो लोग गाँव में रहते थे उन्हें उसे देख कर आश्चर्य होता । क्योंकि वे सब तो काले और गँदले थे जिनके शरीर प्रायः पसीजे रहते, और वह गोरा और चिकना और सुकुमार था और उसके चमकीले बालों में छल्ले पड़े थे । उसके होंठों मे गुलाबी फूलों पखुड़ियाँ दीखती थीं और उसके नेत्र स्फटिक-जल खिले हुए कमल थे । और उसके तमाम अग उस खेत के नर्गिस थे जिस खेत मे खेत काटनेवाले का काम नहीं ।

फिर भी उसकी मनोहरता ने तो उसके लिए बुराई ही की । क्योंकि बड़ा हो कर वह घमडी, क्रूर और स्वार्थपर होगया । लकड़हारे के तथा गाँव

के दूसरे बालकों को वह घृणा करता। वह कहता—"ये सब क्षुद्र माता-पिता की संतान हैं और मैं उच्च हूँ क्योंकि मेरी उत्पत्ति आकाशके नक्षत्र से है।" वह अपने को उनका मालिक समझता और उनको अपना नौकर। उसे गरीबों पर दया नहीं थी। जो अन्धे या लँगड़े या और किसी प्रकार से अपाहिज होते उन पर वह पत्थर फेंकता और उन्हें सड़क पर दूर तक खदेड़ आता। उन्हें उस गाँव में भीख तक न माँगने देता। उसे अपनी सुन्दरता और स्वस्थता का बड़ा गुमान हो गया था। और दुर्बल तथा असुन्दर की खिल्ली उड़ाने में उसका विनोद होता था। वह केवल अपने आप को ही प्रेम करता और गर्मियों में, जिस समय लू नहीं चलती होती, वह गाँव के पाडे की बावड़ी पर पेड़ों की छाया के नीचे जा लेटता और बावड़ी के जल में अपना रूप निहार-निहार कर प्रसन्न हुआ करता।

लकड़हारा और उसकी पत्नी प्रायः उसे समझाते—"हमने तो तुम्हारे साथ वैसा नहीं किया जैसा तुम बे-आसरे गरीबों के साथ करते हो, जिन्हें कोई सहायता पहुँचानेवाला नहीं है। जिन पर दया करनी चाहिए तुम उनके साथ इतनी कठोरता क्यों करते हो?

प्रायः बुड्ढा पाँडे उसे अपने यहाँ बुला कर जीव प्रेम की शिक्षा देता और कहता—"मक्खी-पतिंगे भी तुम्हारे भाई-बहिन हैं। उन्हें हानि मत पहुँचाओ। जंगल की चिड़ियाँ जो जंगल में घूमती हैं उन्हे भी अपनी स्वाधीनता का अधिकार है। अपने खेल के लिए उन्हें जाल में न फँसाओ। ईश्वर ने ही कीड़े-मकोड़े भी बनाए हैं। विश्व के भीतर उनका भी स्थान है। भगवान के संसार में कष्ट और पीड़ा को जन्म देने वाले तुम कौन होते हो? खेतों मे जो पशु डोलते और घास चरते हैं वे भी उसकी कीर्ति गाते हैं।"

पर तारांशिशु के ऊपर किसी के भी शब्दों का प्रभाव न होता। वह उन पर गुस्सा करता, मुँह बिगाड़ता और अपने साथियों में जाकर उन पर शासन करने लगता। और उसके साथी उसके शासन को मानते थे क्योंकि उसका रंग गोरा था और उसके पैर में लचक थी, वह नाचता और सीटी बजाता था, गाना गाता था। जहाँ कहीं तारांशिशु उन्हें ले जाता वहीं वे

जाते और जो कुछ करने को वह उन्हें कहता वही वे करते। जब वह एक तेज नुकीली सलाख लेकर छछूँदर की आँख मे घुसेड़ देता तो वे हँसते और जब वह कोढ़ी के ऊपर पत्थर फेंकता तो वे खिलखिलाते। सभी बातों में वह उनका शासक और निदर्शक था और होते-होते वे भी वैसे ही कठोर-हृदय हो गए जैसा वह स्वय था।

[३]

एक दिन ऐसा हुआ कि उस गाँव में होकर एक बेचारी भिखमंगी निकली। उसके कपड़े फटे हुए, चिथड़े थे और दूर से पथरीली सड़क पर चलती आने से उसके पैरों से खून बह रहा था। उसकी दशा बड़ी ही खराब थी। बहुत अधिक थकी होकर वह थोड़ी देर सुस्ताने को एक पेड़ के नीचे बैठ गई।

परन्तु जब ताराशिशु ने उसे देखा तो वह अपने साथियों से बोला, "देखो, यहाँ इस सुन्दर और हरे-हरे पत्तोंवाले मनोहर वृक्ष के नीचे यह गन्दगी कोढन बैठी है। बदसूरत और घिनौनी इसको यहाँ बैठने का क्या अधिकार है? चलो इसे मार भगाएँ।"

अतः उसके पास पहुँच कर उन लोगों ने उस पर पत्थर फेंके और उसकी भर्त्सना की। वह व्याकुल तथा घबड़ाई दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी, और उसी प्रकार देखती रही। जब लकड़हारे ने, जो पास ही में कहीं लकड़ी चीर रहा था, ताराशिशु का यह कर्म देखा तो वह दौड़ा आया और यों झिड़कने लगा—"क्यों, क्या तेरा दिल बिलकुल पत्थर का बना है? तेरे में बिलकुल ही दया नहीं है क्या? इस गरीबनी ने तेरा क्या बिगाड़ किया है जो तू इस तरह उसे सता रहा है।"

ताराशिशु तो इस पर क्रोध से लाल होगया और अपना पैर भूमि पर पटकता हुआ बोला, "जा जा, तू कौन है जो मुझ से इस तरह सवाल-जवाब करने आया है? मैं कोई तेरा लड़का नहीं हूँ जो तू आकर मुझे हुकुम देगा।"

बुढ़िया ने जब ये बातें सुनीं तो उसके मुँह से दुःख के साथ एक ज़ोर की चीत्कार निकल गई और वह बेहोश होकर गिर पड़ी। यह देख लकड़हारा बेचारा उसे उठा कर अपने घर ले गया और उसकी पत्नी उस बुढ़िया की शुश्रूषा करने लगी। जब बुढिया को फिर चेतना हो आई तो उन लोगों ने उसके सामने खाने-पीने को रक्खा और उसे सान्त्वना दी।

पर उसने न तो कुछ खाया और न पिया और लकड़हारे से यों पूछने लगी, "क्यों जी अभी तुमने मुझ से यह कहा था न कि तुम्हें यह बालक जङ्गल में मिला था · · और तुमने यह भी कहा था कि इस बात को दस बरस होगए ?"

और लकड़हारे ने उत्तर दिया, "हाँ माँ, मुझे यह जङ्गल में ही मिला था और इस बात को दस बरस हो गए।"

"और तुमने इसके साथ क्या-क्या वस्तुएँ देखी थीं ? इसके गले में एक जजीर भी थी क्या ? और क्या यह एक सुनहरी तारों के लबादे में नहीं लिपट रहा था ?"

"हाँ हाँ," लकड़हारे ने कहा, "इसी तरह यह मुझे मिला था।" और वह दौड़ा गया गले की जजीर और सोने का लबादा सन्दूक से निकाल लाकर बुढ़िया को दिखाने के लिए।

और जैसे ही बुढ़िया ने दोनों को देखा वह आनन्द में भर कर रोने लगी और बोली, "यही मेरा बेटा है। यही मेरा लाल है जिसे मैं जगल मे खो आई थी। भैया, उसे जल्दी से बुलवाओ तो। मैं दुखिया दस बरस से उसके लिए तमाम दुनिया छानती फिर रही हूँ।"

सो लकड़हारा और उसकी पत्नी ताराशिशु के पास गए और उससे बोले, "चलो चलो, जल्दी घर चलो। यहाँ तुम्हारी माँ बैठी तुम्हारी बाट जोह रही है।"

ताराशिशु आश्चर्य और आनन्द से उछलता हुआ घर पहुँचा। पर जब उसने वहाँ उसे देखा जो बैठी थी तो वह घृणा से हँस कर कहने लगा,

"क्यों, कहाँ है मेरी माँ ? यहाँ तो इस घिनौनी भिखारिन को छोड़ मुझे और कोई नहीं दीखता।"

और तब बुढ़िया प्यार से बोली, "आ-आ, बेटा! मैं ही तेरी माँ हूँ।"

"ऐं! तू मेरी माँ है! क्या तू पागल भी है? इस चिथड़ही, बदसूरत भिखमगनी का मैं बेटा हूँ! जा-जा, भाग यहाँ से, अभी निकल। तेरी सूरत मुझे दिखाई न दे"

"नहीं-नहीं बच्चे, तू ही मेरा बेटा है जिसे मैंने जगल में पैदा किया था," और उसने घुटनों के बल बैठ कर अपने बेटे को गोद में लेने के लिए दोनों हाथ फैला दिए।—"बेटा, डाकू तुझे मुझ से छीन कर ले गए थे और वहीं कहीं डाल गए थे"—उसने फिर धीरे-धीरे कहा—"पर जब मैंने तुझे देखा तो झट पहचान लिया, और मैंने उस लबादे और जजीर को भी पहचान लिया जो तेरे साथ था। ले ले बेटा, अब देर मत कर और मेरी गोदी में आ जा। मैं दुनिया भर में तुझे ढूढ़ फिरी हूँ। अब तो मुझे अपना प्यार दे। मुझे उसकी बड़ी जरूरत है।"

पर ताराशिशु अपनी जगह से नहीं हिला। उसने अपने हृदय के कपाट बिलकुल ही बन्द कर लिए। स्त्री के सिसकने की आवाज़ को छोड़ कर और किसी तरह की आवाज़ भी वहाँ नहीं हुई।

और जब अन्ततः ताराशिशु ने अपना मुँह खोला तो उसके शब्द कठोर और कड़वे थे। उसने कहा, "देख यदि तू सचमुच ही मेरी मा है तो भी यही अच्छा था कि तू मुझे घृणित बनाने के लिए यहाँ न आती, क्योंकि तुझे मालूम है कि मैं अपने आप को तुझ जैसी भिखमगी का पुत्र न समझ कर नक्षत्र का पुत्र समझता हूँ। इसलिए तू अब यहाँ से भाग जा और मैं तुझे कहीं भी न देखने पाऊँ।"

"मेरे बेटे! मेरे बेटे! मैं चली जाऊँगी। पर क्या तू मुझे एक बार अपना चुम्बन भी नहीं करने देगा। मैंने तुझे पाने के लिए बड़ी मुसीबतें उठाई हैं।"

"नहीं नहीं, जा, चली जा। तेरी सूरत ही देखने में घिन आती है। क्या तू मेरा चुम्बन करेगी! साँप और मेंढक भी देखने में तुझ से कहीं अच्छे हैं।"

फिर हार कर बुढ़िया को उठना ही पड़ा और वह रोती हुई जंगल की तरफ चली गई। तारशिशु को उसके चले जाने पर बड़ी प्रसन्नता हुई और वह दौड़ा-दौड़ा फिर अपने साथियों मे खेलने को चला गया।

[४]

परन्तु ज्योंही साथियों ने उसे आते हुए देखा, वे उसे चिढ़ाने लगे और कहने लगे, "अरे, अरे, यह क्या हुआ। तुम तो साँप से भी अधिक डरावने और मेंढक से भी ज्यादा बदसूरत हो गए। हटो, हटो, हमारे पास से। हम तुम्हारे साथ नहीं खेलेंगे' और यह कहते-कहते उन्होंने उसे बगिया मे से खदेड़ दिया।

और ताराशिशु झल्लाने लगा और अपने मन में सोचने लगा, "यह सब-के-सब क्या बकवाद करते हैं? मेरे समान तो इनमे से कोई भी सुन्दर नहीं है। अच्छा मैं बावड़ी के जल मे जाकर देखूँगा। जल तो बता ही देगा कि मैं कितना सुन्दर हूँ।"

तो बस, वह बावड़ी पर गया और उसके जल मे झाँक कर देखने लगा। और जल में उसने देखा कि उसका चेहरा मेंढक से भी ज्यादा घृणित है और उसके शरीर पर साँप की तरह चित्तियाँ पड़ी हुई हैं। तब तो वह घास पर पड़ रहा और फूट-फूट कर रोने लगा और कहने लगा, "यह सब मेरे पाप का दंड है। मैंने अपनी मा का तिरस्कार किया, उसे ठुकरा कर निकाल दिया, उसके साथ घमंड और निर्दयता से बातें कीं। यह सब उसी का दंड है। मैं भी जाऊँगा और उसे तमाम दुनिया में ढूढ़ूँगा, जैसे उसने मुझे ढूँढो था। और जब तक उसे ढूँढ नहीं लूंगा मुझे चैन नहीं पड़ेगा।

लकड़हारे की छोटी लड़की उसके पास आई और सहानुभूति से उसके कंधे पर हाथ रखती हुई बोली, "अच्छा यदि तुम्हारी सुन्दरता चली

गई तो भी क्या हुआ ? तुम कही मत जाओ, यहीं रहो। मैं तुम्हें नहीं चिढाया करूँगी।"

परन्तु ताराशिशु ने कहा, "मैं तो अब नहीं रुक सकता। मैंने अपनी माता का तिरस्कार किया है और उसी का मुझे यह फल मिला है। अब तो मैं जाऊँगा ही और तब तक तमाम दुनिया में उसे ढूढूँगा जब तक वह मुझे मिल नहीं जाएगी और क्षमा नहीं कर देगी।"

और वह जगल की तरफ दौड़ चला और चिल्ला-चिल्ला कर अपनी माता को पुकारने लगा। परन्तु कहीं से भी कोई भी उत्तर उसे नहीं मिला। दिन भर वह उसे इसी तरह पुकारता रहा और जब रात हुई तो कुछ पत्ते बटोर कर वहीं बिछा कर सो रहा। उसे वहाँ देख कर पशु और चिडियाँ वहाँ से भागने लगीं, क्योंकि उन्हे उसके निर्दय कर्मों की याद थी। केवल मेंढक अवश्य उसके पास बैठे रहे और साँप उसके इधर-उधर रेंगते रहे।

दिन निकला तो वह उठा, कुछ कच्ची पकी बेरियाँ तोड कर खा लीं और फिर जँगल में घूमने और 'मा मा' करके रोने-चिल्लाने लगा। जगल में जो कोई, जो कुछ भी, उसे मिलता उसी से पूछता कि क्या तुमने मेरी मा देखी है।

छछूंदर से उसने पूछा, "तुम तो ज़मीन के भीतर भी चली जा सकती हो। बताओ तो, क्या मेरी माता को वहाँ देखा है ?"

पर छछूंदर ने उत्तर दिया, "तुमने तो मेरी आँखे फोड रक्खी हैं। मैं देख ही कैसे सकती हूँ।"

और चिड़िया से पूछा, "तुमतो ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के शिखरों पर चढ़ कर सारा ससार देखती होगी। क्या कहीं मेरी माता दिखाई दी है ?"

पर चिड़िया ने भी उत्तर दिया, "तुमने अपने उत्सव के लिए मेरे पख काट डाले थे। अब मैं उड़ कैसे सकती हूँ ?"

और फिर गिलहरी से उसने पूछा, "कहो तो जी, कहीं मेरी माता का भी पता है ?

पर गिलहरी बोली, "तुमने मेरी माता को तो मार ही अब अपनी को भी मारोगे ?"

तब ताराशिशु रोने लगा और सिर झुका कर बैठ गया और ईश्वर की उन रचनाओं से क्षमा माँगने लगा जिनका उसने अपकार किया था। वह भिखारिनी को ढूंढता-ढूंढता फिर जगल मे भटकने लगा। तीसरे दिन वह जँगल के दूसरे सिरे पर पहुँचा और सामने के मैदान मे चलने लगा।

जब वह गाँवों में पहुँचा तो वहाँ के बालकों ने उस पर तालियाँ बजाईं और पत्थर फेंके। और किसानों ने उसे अपने खलिहानों के पास तक न सोने दिया—इस डर से कि कहीं यह अभागा कटे हुए अनाज पर किसी तरह का कुभाग्य न ढलका दे। किराए के मजदूरों तक ने उसे धक्का देकर भगा दिया—ऐसा बदसूरत वह था—और किसी ने भी उसे कोई दया नहीं दिखाई।

तीन बरस तक उसने दुनिया का चक्कर काटा पर उसे वह भीख माँगने वाली न मिली जो कि उसकी माता थी। कभी-कभी ऐसा होता कि वह उसे दूर से दिखाई देती-सी मालूम होती और वह उसे ज़ोर ज़ोर से पुकारने लगता। और वह उसे पकड़ने के लिए तेज़ी से दौड़ता और रास्ते के पत्थर उसके पैरों में घाव कर के खून निकाल देते। परन्तु वह उसे पकड़ न पाता। मार्ग के लोगों से जब वह पूछता तो वे कहते कि हमने तो किसी भी स्त्री को नहीं देखा है, और जब वह दुखी होता तो वे हंसते।

तीन बरस तक उसने तमाम दुनिया की खाक छानी और इन तीन बरस में उसे कहीं भी प्रेम या दया या सहानुभूति का लेश तक न मिला। भगवान् ने उसे वैसे ही दुनिया बरतने को दी जैसी कि उसने स्वय अपने गर्व और अहकार के दिनों में बना ली थी।

एक रोज़ सायकाल को वह एक शहर की चारदीवारी के द्वार पर पहुँचा, जो एक नदी के किनारे बसा हुआ था। वह बहुत थका-माँदा था, पर इस बात की चिन्ता न कर वह फाटक मे प्रवेश करने के लिए बढ़ा। परन्तु

उसकी ऐसी चेष्टा देखते ही पहरे के सिपाहियों ने उसके सामने द्वार में अपनी बरछियाँ रोप दीं और कर्कश स्वर में उससे कहा, "क्यों, क्या है? कहाँ जाता है?"

"मैं अपनी माता को ढूढता फिरता हूँ," उसने उत्तर दिया, "और मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, देखो, मुझे जाने दो। क्या जाने वह इसी नगर मे हो।"

पर वे उसे चिढ़ाने और व्यग्य बोलने लगे। एक ने अपनी ढाल नीचे रख कर दाढ़ी हिलाते हुए कहा, "अख् आ· । जनाब की मा जनाब को देख कर बहुत ही खुश होंगी क्योंकि जनाब मेंढक से भी ज्यादा खूबसूरत और चितकबरे साँप से भी ज्यादा हसीन हैं। क्यो न?—जा जा, भाग यहाँ से। नहीं है तेरी मा इस शहर में।"

एक दूसरा, जिसके हाथ में पीला झडा था, बोला, "क्यों जनाब, आपकी मा कौन साहिबा हैं और आप उन्हें क्यो तलाश कर रहे हैं?"

और उसने उत्तर दिया, "मेरी मा भी भिखारिनी है, जैसा कि मैं हू। मैंने उसके साथ बड़ा बुरा बर्ताव किया है और इसीलिए मैं तुमसे खुशामद करता हूं कि मुझे जाने दो जिससे मैं उसकी क्षमा माँग सकूं। शायद वह इसी नगर मे निकल आवे।"

परन्तु उन्होंने उसकी प्रार्थना न सुनी और अपने भाले उसको चुभाने लगे।

और जब वह वहाँ से रोता हुआ लौट कर जाने लगा तो एक आदमी जो कवच धारण कर रहा था, और जिसके कवच पर नीले फूल बन रहे थे और जिसके फौजी टोप के ऊपर परोंदार एक सिह बैठाया हुआ था, वहाँ आया और सिपाहियों से उसके सबध में पूछने लगा जो नगर में जाना चाहता था। और सिपाहियो ने कहा, "यह कोई भिखमगा है और किसी भिखमगे का ही बालक है और हमने इसे भगा दिया है।"

"पर नहीं," वह कवचधारी हँस कर बोला, "यह तो गुलामो मे बेचा जा सकता है। इसकी कीमत से एक प्याला शराब खरीदी जा सकेगी।"

और तभी उधर से एक क्रूर मूर्ति बुड्ढा निकला और उसने कहा, "हाँ मैं इसे इतने दामों में खरीद सकता हूँ," और उसने तत्काल मूल्य निकाल कर दे दिया। और मूल्य लेकर सिपाहियों ने तारशिशु को पकड़ कर उसके हाथों सौंप दिया।

[५]

तब वह बुड्ढा तारा-शिशु का हाथ पकड़ कर उसे शहर की गलियों-गलियों ले जाने लगा। अन्ततः वे एक छोटे से द्वार पर पहुँचे जो अनार के वृक्षों से ढका हुआ थो। बुड्ढे ने द्वार को अपनी मणिजटित अँगूठी से छुआ और द्वार खुल गया। उसमें प्रवेश कर वे पीतल की पाँच सीढ़ियाँ नीचे उतरे और काले-काले फूलों और जली मिट्टी के हरे-हरे घड़ों से भरे हुए एक बगीचे में आए। इसके बाद वृद्ध "मनुष्य ने अपनी जेब से एक रूमाल निकाल कर ताराशिशु की आँखों से बाँध दिया और उसे अपने आगे-आगे ले चला। और जब ताराशिशु की आखें खोली गई तो उसे पता लगा कि वह कैद में है और उसकी कोठरी में सींग का एक चिराग जल रहा है।"

और बूढे ने एक खपड़े पर कुछ मोटी-सी रोटी उसके सामने रख कर कहा, "खा"। और उसने मिट्टी के एक शकोरे में पानी रख दिया और कहा, "पी" और जब ताराशिशु खा-पी चुका तो बुड्ढा चला गया और बाहर से द्वार में ताला लगाता गया।

बुड्ढा उस नगर का सब से बड़ा जादूगर था और उसने अपनी कला का ज्ञान नील नदी के पास के क़स्बों में रहने वाले एक करामाती से सीखा था। अगले रोज दिन निकलने पर उसने ताराशिशु के पास आकर कहा, "देखा, पास ही के जगल में सोने के तीन टुकड़े छिपे हुए हैं। एक सफेद सोने का है, दूसरा पीले सोने का और तीसरा लाल सोने का। आज तू सफेद सोने का टुकड़ाढूँढ लाकर मुझे दे, और जो तू नहीं लाया तो, याद रख, तेरे सौ बेत मारूँगा। और अब तू जल्दी ही जा और शाम को मैं बाग के दरवाजे पर तेरा इन्तजार करूँगा। याद रहेगा न? सफेद सोना लाना होगा,

सफ़ेद सोना, नहीं तो तेरे हक में अच्छा न होगा। तू मेरा गुलाम है और मैंने एक प्याला शराब की कीमत में तुझे खरीदा है।" इतना कहकर उसने ताराशिशु की आँखों से रुमाल बाँध दिया और उसे वहाँ से निकाल कर काले फूलों के बाग में होता हुआ पीतल की पाँच सीढ़ी चढा कर द्वार के बाहर ले गया और वहाँ उसे गली में छोड़ दिया।

ताराशिशु नगर का फाटक पार करके उस जङ्गल मे पहुँचा जिसमे जाने को जादूगर ने उससे कहा था।

बाहर से देखने से यह जङ्गल बड़ा मनोरम मालूम होता था। उसमे चिड़ियाँ मनोहर गीत गाती हुई सुनाई देती थीं और ऐसा मालूम होता था कि उसमें बड़े मधुर फूल होंगे क्योंकि उनकी सुगन्ध बाहर तक आ रही थी। सो, ताराशिशु ने बड़ी खुशी-खुशी उस जङ्गल में प्रवेश किया। पर उसके प्रवेश करते ही जङ्गल की तमाम शोभा उसके लिए कटीली बन गई। क्यों कि जिधर-जिधर वह गया उधर-उधर ही चारों तरफ से लम्बे-लम्बे काँटे भूमि में से फूट पड़े और उसके शरीर में चुभने लगे। लम्बी-लम्बी तेज़ किनारों वाली घास से उसकी खाल कटने लगी और ताराशिशु को बड़ा भारी कष्ट हुआ। फिर भी सुबह से दोपहर हो गया उसे सोने का टुकड़ा ढूँढते ढूँढते, और दोपहर से शाम, पर सोने का टुकड़ा उसे कहीं न मिला। और तब वह रोता-रोता घर की तरफ लौटा और सौ बेंतों से पिटने की कल्पना कर रोने लगा।

पर जङ्गल के सिरे पर पहुँच कर उसने एक झाड़ी मे से किसी की कष्ट की सी आवाज़ आती हुई सुनी, और अपने कष्ट को भूल कर वह उधर ही देखने के लिए चला। वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि एक खरगोश जाल मे फँसा पड़ा है जो किसी जालिए ने वहाँ बिछा रक्खा था।

ताराशिशु को उस पर दया आई और उसने उसे छुड़ाते हुए कहा, "मैं स्वय भी गुलाम हूँ और आज़ादी के मूल्य को समझता हूँ। मुक्त हो जाओ।"

और खरगोश ने कृतज्ञता दिखाते हुए कहा, "तुमने मुझे आज़ादी दी है, सो बताओ तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ ? बदले में उपकार करना मेरा कर्त्तव्य है ।

तब ताराशिशु ने उत्तर दिया, "मैं सुबह से सफेद सोने के टुकड़े को ढूँढ़ता फिर रहा हूँ पर उसे कहीं भी नहीं पा सका । और यदि मैं खाली हाथ लौटूंगा तो मेरा स्वामी मुझे मारेगा ।"

"आओ, मेरे साथ आओ," खरगोश बोला, "मैं तुम्हें अभी वह स्थान दिखाए देता हूँ जहाँ वह सोने का टुकड़ा छिपा हुआ है ।"

ताराशिशु खरगोश के साथ चल दिया और कुछ दूर जाकर एक शहतूत के पेड़ के खोखले में उसे वह सोने का टुकड़ा रक्खा दिखाई दिया । और ताराशिशु आनन्द से भर गया और आनन्द में भर कर उसने वह सोने का टुकड़ा उठा लिया और खरगोश से कहा, "मैंने जो भलाई तुम्हारे साथ की थी उससे सौ-गुनी तुमने मेरे साथ की है और मैंने जो दया तुम्हें दिखाई थी उससे सौ-गुनी दया तुमने मुझे दिखाई है ।"

"नहीं, नहीं," खरगोश ने कहा, "जैसा तुमने मेरे साथ किया ठीक वैसा ही मैंने तुम्हारे साथ किया है ।" यह कह कर वह भाग गया और ताराशिशु नगर की तरफ चला ।

परन्तु नगर-द्वार पर उसे एक कोढ़ी बैठा हुआ मिला । उसके सिर पर एक बारीक कपड़ा ढका हुआ था और उस कपड़े के दो सुराखों में से उसके नेत्र लाल अङ्गारे की तरह चमक रहे थे । जब उसने ताराशिशु को आते हुए देखा तो वह अपने लकड़ी के खपड़े को हिलाने लगा और उससे बोला, "मुझे एक पैसा दे दे बच्चा ! मैं भूखा मर रहा हूँ । लोगों ने मुझे शहर से निकाल दिया है । मेरे ऊपर किसी को रहम नहीं है ।"

"मैं लाचार हूँ भाई," ताराशिशु ने कहा, "मेरे पास केवल एक ही वस्तु है और उसे अगर मैं अपने मालिक के पास नहीं ले जाऊँगा तो वह मुझे पीटेगा क्योंकि मैं उसका गुलाम हूँ ।"

पर कोढ़ी गिड़गिड़ाने और खुशामद करने लगा जिस पर ताराशिशु को तरस आ गया और उसने सोने का टुकड़ा निकाल कर उसे दे दिया।

और जब वह जादूगर के मकान पर पहुँचा तो जादूगर ने द्वार खोल दिया और उसे भीतर ले गया और वहाँ उसने उससे पूछा, 'क्यों, ले आया सफेद सोने का टुकड़ा तू?" और जब ताराशिशु ने कहा कि मेरे पास नहीं है तो जादूगर उस पर टूट पडा और उसे पीटने लगा। उसने उसके सामने एक खाली खपडा रख कर कहा, 'खा" और एक खाली शकोरा रख कर कहा, "पी।" और बाद में उसे फिर अँधेरी कोठरी मे ढकेल दिया।

अगले दिन फिर सुबह के समय जादूगर ने उसके पास आकर कहा, "अगर आज तूने मुझे पीले सोने का टुकड़ा लाकर नहीं दिया तो मैं जिन्दगी भर तुझे अपना गुलाम रक्खूँगा और तेरे तीन सौ बेत मारूँगा।"

सो ताराशिशु फिर जँगल मे पहुँचा और दिन भर पीले सोने का टुकड़ा ढूँढ़ता रहा, पर उसे कहीं न पा सका। और जब शाम को वह फिर बैठ कर रोने लगा तो वही खरगोश पुन. उसके पास आया और उससे बोला, "क्यों जी, तुम क्यों रो रहे हो और आज इस जङ्गल में क्या तलाश कर रहे हो?"

इस पर ताराशिशु ने उत्तर दिया, "आज मैं पीले सोने का टुकड़ा ढूँढ़ने आया हूँ और वह मुझे अभी तक कहीं भी नहीं मिला है। और अगर मैं उसे अपने मालिक के पास नहीं ले जाऊँगा तो वह हमेशा के लिए मुझे गुलाम बनाए रक्खेगा।"

"अच्छा तो फिर मेरे पीछे-पीछे आओ," खरगोश ने कहा और वह तारा शिशु को एक पानी के गड्ढे के पास ले गया। ताराशिशु ने देखा कि सोने का टुकड़ा गड्ढे की तली में पड़ा चमक रहा है।

"मैं तुम्हें किस तरह धन्यवाद दूँ," उसने खरगोश से कहा, "यह दूसरी बार तुमने सहायता करके मेरी रक्षा की है।"

'नहीं, पहले तो तुमने ही मेरी सहायता की थी। इसलिए तुम्हारा ही अधिक उपकार है।" और खरगोश यह कह कर भाग गया।

और ताराशिशु ने पीले सोने का टुकड़ा उठा कर अपनी जेब में रख लिया और वह शहर की ओर चला। परन्तु कोढ़ी ने उसे आते हुए देख लिया और दौड़ कर आकर गिड़गिड़ाने लगा, "मुझे कुछ देते जाओ, दाता, नहीं तो मैं भूख से मर मिटूँगा।"

इस पर ताराशिशु ने उससे कहा "मेरी जेब में केवल एक सोने का टुकड़ा है और अगर उसे ले जाकर मैं अपने मालिक को नहीं दूँगा तो वह मारेगा और मुझे हमेशा गुलाम बना कर रक्खेगा।"

परन्तु कोढ़ी बहुत गिडगिडाया और उसने बहुत मिन्नतें कीं और ताराशिशु का हृदय दया से पिघल गया। उसने कोढ़ी को पीले सोने का टुकड़ा दे दिया और जब वह जादूगर के मकान पर पहुँचा तो जादूगर ने भीतर ले जाकर उससे पूछा, "बोल, पीले सोने का टुकड़ा लाया है?" और ताराशिशु ने उत्तर दिया, "नहीं"—। इस पर जादूगर ने उसे खूब पीटा, खूब पीटा, और फिर हथकडी-बेडियो मे जकड कर उसे अंधेरी कोठरी में डाल दिया।

अगले रोज दिन निकलने पर जादूगर उसके पास फिर आया और बोला, "इधर देख, अगर आज तूने मुझे लाल सोने का टुकड़ा ला दिया ता मैं तुझे मुक्त कर दूँगा, पर जो तू नहीं लाया तो मैं निश्चय ही तुझे मार डालूँगा।"

बेचारा ताराशिशु फिर जङ्गल की ओर चल दिया। और दिन भर लाल सोने के टुकड़े को उसने ढूँढ़ा पर कोई फल न हुआ। और शाम को जब वह निराश होकर बैठकर रोने लगा तो वही खरगोश उसके पास फिर आया।

"अरे तुम रो क्यों रहे हो? जिस लाल सोने की तलाश में तुम हो वह तो तुम्हारे पीछे ही उस खोह में रक्खा हुआ है।" खरगोश ने उससे कहा?

"मैं कैसे तुम्हारा बदला चुकाऊँ, मेरे मुसीबत के साथी," ताराशिशु विह्वल होकर बोला, "यह देखो, यह तीसरी बार तुम मेरी रक्षा कर रहे हो।"

"अरे चुप, चुप। तुमने ही तो पहले मेरे साथ भलाई की थी," और यह कहते-न-कहते खरगोश वहाँ से नौ-दो-ग्यारह होगया।

तब तारा-शिशु उस खोह मे घुसा और उसके दूर के कोने में उसे लाल सोने का टुकड़ा रक्खा हुआ मिला। टुकड़े को जेब मे रख वह जल्दी से नगर को ओर रवाना हुआ। और ज्यो ही कोढ़ी ने उसे जाते देखा वैसे ही आकर उसके सामने खड़ा होगया और कहने लगा, "वह लाल सोने का टुकड़ा जो तुम्हारे पास है मुझे देदो, नही तो मैं भूख से मर जाऊँगा," और तारा-शिशु को फिर पहले की भाँति उस पर दया आगई और उसने कोढ़ी को सोने का टुकड़ा दे दिया। परन्तु वह जानता था कि ऐसा करने से आज उसे किस दुर्भाग्य का सामना करना पड़ेगा और उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था।

[६]

परन्तु वहाँ तो एक आश्चर्य घटित होगया। क्योंकि जैसे ही तारा-शिशु नगर द्वार में होकर निकलने लगा वैसे ही सब पहरेदारों ने सावधान होकर उसे झुक कर सलाम किया और वे आपस में कहने लगे, "देखो, देखो, हमारे स्वामी कितने सुन्दर हैं।" और एक झुंड का झुंड तारा-शिशु के पीछे लग गया और हाथ उठा-उठा कर आनन्द से चिल्लाने लगा। "निस्सन्देह ससार-भर में हमारे स्वामी के समान कोई भी सुन्दर नहीं है, ससार भर में हमारे स्वामी के समान कोई भी सुन्दर नहीं है।" तारा-शिशु वेचारा तो यह देख कर रोने लगा और मन में सोचने लगा—"ये लोग मुझे क्यों चिढ़ा रहे हैं? इन्हें मेरे कष्ट में मज़ा आता है।" आदमियों की भीड़ यहाँ तक बढ़ी कि वह अपना रास्ता भूल गया और भटकता-भटकता एक बड़े से चौक में पहुँच गयो जहाँ एक बादशाह का महल खड़ा था।

परन्तु तारा-शिशु के उधर पहुँचते ही महल के फाटक खुल पड़े और राज-पुरोहित तथा बड़े-बड़े कर्मचारी उसकी अगवानी के लिए दौड़े। वे

उसके सामने अति विनीत हो कर बोले, "पधारिए, पधारिए, आप ही के लिए हम इतने समय से प्रतीक्षा कर रहे थे। आप ही हमारे महाराज के पुत्र हैं।"

तारा-शिशु बेचारा घबड़ाया और बोला, "नहीं नहीं, मैं तो किसी महाराज बादशाह का पुत्र नहीं हूँ। मैं तो एक ग़रीब भिखारिन का लड़का हूँ। और यह तुम क्यों कहते हो कि मैं सुन्दर हूँ? मैं स्वय जानता हूँ कि मैं कितना कुरूप हूँ।

तब एक सरदार, जिसके कवच पर फूल बन रहे थे और जिसके फौजी टोप के ऊपर एक पखदार केहरी बनाया हुआ था, आगे बढ़ा और अपनी तारा-शिशु के सामने अपनी चमकती हुई ढाल करके बोला, "मेरे स्वामी कैसे कहते हैं कि वह सुन्दर नहीं है?"

और तारा-शिशु ने ढाल में देखा और अपनी प्रतिच्छाया में उसे अपना मुख वैसा ही सुन्दर दिखाई दिया जैसा कि वह पहले था और उसके शरीर की तमाम पुरानी कमनीयता उसमें पूर्ववत् लौट आई थी। और उसे अपने नेत्रों में एक ऐसी विशेषता दिखाई दी जो उसने पहले नहीं देखी थी।

राज-पुरोहित और तमाम अधिकारियों ने घुटने टेक कर उसको वन्दना की और उससे कहा, पुराने दिनों में पण्डितों ने भविष्य-वाणी की थी कि आज के दिन हमको वह मिलेगा जो हम पर शासन करेगा वह भविष्यवाणी सत्य हुई है। सो, हे हमारे प्रभु, अब आप उस राजमुकुट और राजदण्ड को स्वीकार कीजिए अपने न्याय तथा दयाधर्म को धारण कर हमारे राजा बनिए।"

पर तारा-शिशु ने उनसे कहा. "नहीं मैं इस सब के योग्य नहीं हूँ, क्योंकि मैंने अपनी उसी माँ को अस्वीकार कर दिया जिसने मुझे पैदा किया था। और न मैं तब तक कहीं चैन से बैठ ही सकता हूँ जब तक कि वह मुझे मिल नहीं जाएगी और मुझे क्षमा नहीं कर देगी। यद्यपि तुम मुझे राजदड और राजमुकुट भेंट कर रहे हो, पर मैं तो यहाँ ठहर ही नहीं

अकुंता! मुझे तो तमाम दुनियाँ में घूम-घूम कर अपनी माँ को ढूँढ़ना है। इसलिए मुझे अब जाने दो।" और उनसे इतना कह कर वह शहर से बाहर जाने के लिए गली की तरफ घूम पड़ा,—और उधर उसने क्या देखा! सिपाहियों के इर्द-गिर्द भीड़ में वही भीख माँगने वाली स्त्री थी जो उसकी माता थी और उसके बराबर में वही कोढ़ी खड़ा था जो तारा-शिशु को सड़क पर मिला था।

अपनी माता को देखते ही उसके मुख से एक तीव्र हर्षध्वनि निकली और वह दौड़ कर वहाँ पहुँचा जहाँ वह खड़ी थी। वहाँ उसने उकड़ूँ बैठ कर अपनी माता के पैरों के घावों को साफ किया और उन्हें अपनी आँखों के आँसुओं से धोया। वेदना से अपने सिर को धूलि मे लुटाता हुआ सिसकियाँ भर कर वह अपनी माँ से कहने लगा, "अपने घमण्ड के दिनों में मैंने तुम्हारा तिरस्कार किया था। मेरी दीनता के दिनों में तुम मुझे स्वीकार करो माँ। मैंने तुम्हे घृणा की थी, तुम मुझे प्यार दो, माँ। मैंने तुझे दुत्कार दिया था। अब वही तेरा पुत्र मातृस्नेह की भीख माँग रहा है। मुझे स्वीकार कर, माँ।"

परन्तु भीख माँगने वाली औरत एक शब्द भी नहीं बोली।

तब तारा-शिशु ने अपने दोनों हाथ फैला कर कोढ़ी के दोनों पैर पकड़ लिए और उससे कहा, "मैंने तीन बार तुम्हारे प्रति दया की है। तुम मेरी माता से कहो कि वह एक बार तो मुझसे बोले।"

परन्तु कोढ़ी ने भी उत्तर में एक शब्द तक न कहा।

बेचारा तारा-शिशु बिलखने लगा और व्याकुल होकर कहने लगा, "मा, मेरी वेदना बढ रही है। मुझसे अब यह सहन नहीं होती। तुम मुझे एक बार क्षमा कर दो और मैं वापिस जङ्गल को चला जाऊँगा। तब भिखारिनी ने उसके सिर पर हाथ रक्खा और कहा, 'उठ"। और कोढ़ी ने भी उसके सिर पर हाथ रक्खा और कहा, "उठ"।

और जब तारा-शिशु ने खड़े होकर देखा तो उसके सामने एक राजा और एक रानी खड़े थे।

रानी बोली, "पुत्र, यह तेरे पिता हैं जिनकी तू ने सहायता की थी।"

और राजा बोला, "पुत्र यह तेरी माता है जिनके पैर के घावों को तू ने अपने आँसुओं से धोया है।"

और राजा और रानी दोनों ने उसे गले से लगाया और उसका खूब चुम्बन किया। वे उसे राजमहल में ले आए, वहाँ उसे नए राजोचित-वस्त्र पहनाए, उसके सिर पर राजमुकुट रक्खा और उसके हाथ में राजदण्ड दिया और तारा-शिशु उस नगर का शासक बन गया। उसके राज्य में न्याय और दया का बोलबाला था। दुष्ट जादूगर को उसने नगर से निकाल दिया और लकड़हारे और उसकी पत्नी के पास उसने बढ़िया-बढ़िया उपहार भेजे तथा उसके लड़कों को अपने राज्य में बुला कर उसने अच्छे-अच्छे पद दिए। उसके राज्य में कोई पशु-पक्षी तक के साथ निर्दयता नहीं कर सकता था। उसने अपनी प्रजाओं को उदारता, दया तथा प्रेम का पाठ पढ़ाया। भूखों को वह रोटी देता तथा नङ्गों को कपड़े। उसके समय में देश भर में सुख और समृद्धि और शान्ति रही।